द्वितीय अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य''

द्वितीय अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य''

1) उपन्यास के तत्व।

2) कथावस्तु।

3) कथावस्तु के भेद।

4) कथावस्तु का महत्व।

5) नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य।

   1. रतिनाथ की चाची
   2. बलचनमा
   3. नई पौध
   4. बाबा बटेसरनाथ
   5. दु:खमोचन

6) निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों का कथ्य''

बीसवी सदी के हिंदी उपन्यासकारों में नागार्जुन का योगदान बहुआयामी एवं महत्वपूर्ण रहा है। साहित्य को जन मान्यता प्रदान करने में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रही है। उन्होंने उपन्यासों में सामाजिक विषमता, दरिद्रता एवं वर्ग संघर्ष को चित्रित किया है। 'मानवता की पुकार' के स्वर को नये समाज के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है। अन्याय, अत्याचार, शोषण से उनका हृदय पीडित हो उठता था। और वही चित्रण साहित्य के रुप में प्रवाहित हुआ है।

हिंदी उपन्यासो में समाज जीवन का यथार्थ चित्रण करने का कार्य प्रेमचंद युग से प्रारंभ हुआ। उन्होंने साहित्य के माध्यम से अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद की। प्रेमचंद के इसी परंपरा को आगे बढाने का श्रेय नागार्जुन को है। उन्होंने भारत के बहुसंख्य श्रमजीवी किसान और मजदुर के जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान की है। नागार्जुन साम्यवाद से प्रभावित, मूल में प्रगतिवादी उपन्यास के जन्मदाता है। उनके मूल में जनवादी चेतना कार्य कर रही है। युगीन समाज जीवन, इतिहास के दर्शन उनके उपन्यासों में होते है। उनके उपन्यास भौतिकवाद के आधार पर वर्गभेद से मूक्त, समतापूर्ण जीवन दर्शन का निर्देश करते हुअे उपन्यास के विरुद्ध संघर्ष के तीव्र प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोन को लेकर विकसित हुअे है। प्रेमचंद के बाद नागार्जुन पहले कथाकार है, जिन्होंने अपनी कृतियों में ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को अत्यंत विशदता से अंकित किया है। उनकी दृष्टि ग्रामीण जीवन के यथार्थ की मिथिला की हरीभरी भूमिपर चलनेवाले वर्ग संघर्ष को सतहपर उतरती हुअी वर्गविषमता को मूर्त करती है, उसमें गहराई रही है।

उनके 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनामा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', आदि उपन्यासों में विधवा, श्रमजीवी, किसान और मजदुर के जीवन को अभिव्यक्ति दी है। उनके इन उपन्यासों में वर्गभेद के दर्शन होते है। अन्याय और शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई है। सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं का चित्रण किया है। ग्रामीण जीवन की विसंगतियों को अत्यंत प्रभावी ढंग से अंकित किया है।

स्वयंम नागार्जुन ग्रामजीवन के पक्षधर है, चितेरे है उनके पास ग्रामजीवन की गहरी अनुभूति है इसी कारण उनका साहित्य संसार ग्रामजीवन का दर्पण बना है। विजयमोहन सिंग के शब्दों में - ''नागार्जुन के पास ग्रामजीवन संबंधी संरचनाओं तथा जानकारियों का अक्षय भांडार है। वे उसके बहिरंग और अंतरंग को जितना जानते है उसके संबंध में जितने ब्यौरे आकडे और उसकी जीवन पद्धति की जितनी व्यापक निधि नागार्जुन के पास है उतनी किसी के पास नहीं है।''[1] यह कथन आलोच्य उपन्यासों के संदर्भ में यथार्थ लगता है। डॉ. संतोषकुमार त्रिपाटी के मतानुसार - ''उनकी रचनाएँ तत्कालीन समाज लोकजीवन और विविध आंदोलनों का ऐतिहासिक दस्तावेज है।''[2] यहाँ स्पष्ट है साहित्यकार जिस आंचल में निवास करता है उससे वह प्रभावित होता है। उसका चित्रण करने में वह सफल रहता है। इसी दृष्टि से नागार्जुन का साहित्य उनके जीवन दर्शन का प्रमाण ही है। ग्रामजीवन का 'कोष' नागार्जुन ही है।

जनकवि समाज का सजग चितेरा और प्रहरी होता है। बाल्यावस्था से जिस मिट्टी में लथपथ होता है, खेलता है, कूदता है, पालित-पोषित होता है वहाँ की सुवास, उमर और हर फूँक उसकी धडकन में बस जाती है। ऐसे ही जनकवि है नागार्जुन। उनका लेखन किशोरवस्था में ही आरंभ हो गया था। तब से आज तक साहित्य सेवा का कार्य जनजीवन के लिए समर्पित है।

हिंदी साहित्य का प्रगतिवादी युग मार्क्सवाद से प्रभावित एक विदेशी वस्तुमात्र नहीं कहा जा सकता क्योंकि जब तक किसी समाज के अंत:करण और वातावरण में युगचेतना की संवेदनशीलता नहीं होती तब तक बाहर के प्रभावों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। ''रचनाकार नागार्जुन का साहित्य जनजीवन का साहित्य है। उनका जनकवि मानव मंगल की भावना से युक्त है जिसमें सर्वहारा को प्रमुख स्थान मिला है।''[3] यह कथन यथार्थ लगता है।

1. उपन्यास के तत्व :-

हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा का महत्वपूर्ण स्थान है। उपन्यास आधुनिक काल की देन होने पर भी उसका विकास पाश्चात्यों की विरासत है। साहित्य निरंतर विकास की धारा हैं। उसमें

परिवर्तन एवं परिवर्धन होता ही रहता है। साहित्य समाज हित की रचना होने के कारण 'सर्वान्त सुखाय' रहती है। साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत में आत्माभिव्यक्ति, आत्मानुभूति को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया हैं। उपन्यास के सृजन में भी अधिक मात्रा में यही भाव रहता है। उपन्यासकार अपने जीवन और जगत के अनुभव शब्दबद्ध करता हुआ रचना का सृजन करता हैं। उसमें भावपक्ष और कलापक्ष का महत्व रहा है। उपन्यास को महत्त्वपूर्ण बनाने में इन्हीं तत्वों का योगदान रहता है। अर्थात हर एक साहित्यकार की अपनी अपनी शैली होती है। अत: रचना कृति का स्वरुप भिन्न-भिन्न होता है। उपन्यास की रचनाओं में भी यही भेद दिखाई देता है।

साहित्य के विविध रुपों की समीक्षा की जाती हैं। समीक्षा के कुछ मापदंड होते हैं उसे 'तत्व' कहा गया है। तत्व वह कसौटी है जिसके सहारे रचना की साहित्यिक समीक्षा की जाती है। साहित्य कृति का मुल्यांकन करके साहित्य क्षेत्र में उसका योगदान स्पष्ट किया जाता है। पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने साहित्यिक पक्ष, साहित्य की उपयोगिता, साहित्य का प्रेरणा स्त्रोत, प्रयोजन पर विचार किया है। तथा तत्वों की भी विस्तृत चर्चा की हैं। उपन्यास मानव जीवन का दर्पण होने के कारण मानव के साथ उसका गहरा संबंध हैं। मानव जीवन का चित्र उपन्यास है, अत: मानव और समाज जीवन से जुड़े उपन्यास के स्वरुप पर विचार हुआ है। उपन्यास के स्वरुप एवं शैली पर विचार करते हुअे कथावस्तु / कथानक या घटनाक्रम, पात्र एवं चरित्रचित्रण, कथोपकथन, देश काल वातावरण, भाषा शैली और उद्देश आदि तत्व स्वीकार लिये हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में हडसन द्वारा स्थापित तत्वों को स्वीकार किया हैं। अर्थात वही तत्व नियामक तथा निर्धारित मानने की परंपरा हैं। अत: उपन्यास की समीक्षा करने के लिए इन्हीं तत्वों का आधार लिया है।

पाश्चात्य विद्वान हडसन ने उपन्यास के तत्वों पर गहराई से चिंतन किया हैं। उपन्यास मानवी जीवन की विस्तृत आलोचना है। उपन्यास जीवन का बृहद चित्रण होने के कारण जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की झाँकी उसमें दिखाई देती है, जिसका तत्वों के सहारे निर्धारण किया जाता हैं। कथावस्तु प्रथम प्रधान तत्व है। जिसके घटनाक्रम, कथानक का रहता हैं। अनेक घटनाओं का जाल से

15486

कथानक बुना जाता है। प्रधान कथा के साथ-साथ गौण कथा विकसित होती हैं। कथानक के विकास में पात्र और चरित्र चित्रण का स्थान रहता है। कथानक विकास और पात्रों का चरित्र-चित्रण एक साथ होता है। उपन्यासकार जीवन की अनेकों घटनाएँ चित्रित करता है। घटनाओं का चित्रण ही कथानक होता है। पात्रों का चरित्रचित्रण समाजजीवन का व्यक्तित्व का अंकन होता हैं। अत: पात्रों का चरित्र उद्घाटित करते समय साहित्यकार को सावधानी बरतनी पडती है। पात्रों की आजादी पर काफी विवाद एवं विचारविमर्श हुआ हैं। कथानक विस्तार में पात्रों का योगदान महत्वपूर्ण होता है।

कथानक में कथोपकथन सहायक रहता हैं। कथ + उपकथन से बना यह शब्द विचारों की अभिव्यक्ति एवं प्रकटीकरण का प्रभाव है। इसे संवाद भी कहा गया है। पात्रों का चरित्रचित्रण और कथाविस्तार में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। कथोपकथन से पात्रों की मानसिकता, विचारक्षमता स्पष्ट हो जाती है। भाषाशैली एक महत्त्वपूर्ण तत्व हैं। देशकालवातावरण का संबंध कथोपकथन से रहता है। घटना जिस काल, परिस्थिति, वातावरण में घटी है उसका चित्रण होता हैं। कथानक को वास्तविक सजीव बनाने में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। उपन्यास सृजन के वही उद्देश्य रहे हैं जो साहित्य के हैं। सफल उपन्यास का कथानक सफल होता हैं। अर्थात वह सभी तत्वों का निर्वहन करता हैं।

साहित्य का शैल्पिक अध्ययन करते समय इन सभी तत्वों का आधार लिया जाता हैं। परंतु प्रस्तुत उपन्यासों का शैल्पिक अध्ययन नहीं बल्कि उनकी कथावस्तु की चर्चा करनी है। आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु उसमें चित्रित घटना जीवन की विविधता को दर्शाने का प्रयास किया हैं। इसी कारण हम यहाँ कथावस्तु की विस्तृत चर्चा करेंगे।

2. कथावस्तु :-

यह उपन्यास का प्राण है। कथानक का चुनाव उपन्यास की आधी सफलता होती हैं। उपन्यास का कथानक जीवन से संबंधित होने के साथ-ही-साथ वास्तविक भी हो सकती हैं। उपन्यासों में जीवन की अभिव्यक्ति कल्पना एवं कला के माध्यम से की जा सकती हैं। कथावस्तु पर विस्तार से

विचार करते हुअे हडसन ने उसके दो प्रकार किये हैं - 1) सुव्यवस्थित कथावस्तु, 2) अव्यवस्थित कथावस्तु। हैनरी जेम्स ने कथावस्तु के प्रस्तुतीकरण की शैली को महत्त्वपूर्ण माना हैं। उनके मतानुसार उपन्यासकार को अपनी समस्त घटनाओं को नाटकीय ढ़ंग से इस प्रकार संजोनी चाहिए की उन घटनाओं को पाठक का मन सरलता से आत्मसात कर ले। हमारे विचार से हेन्री जेम्स का कथन उचित है क्योंकि उपन्यास की कथावस्तु में यह गुण होने ही चाहिए। कथा उपकथाओं का संबंध होना चाहिए अगर कथाओं में सुत्रबद्धता न हो तो उपन्यास का रुप विकृत हो जाएगा।

कथानक को 'प्लॉट' कहा गया हैं। जिस प्रकार प्लॉट के बिना मकान नहीं बनता उसी प्रकार उपन्यासरुपी महल को खडा करने के लिए उसे भव्य बनाने के लिए कथानक का होना जरुरी है। यहाँ स्पष्ट है उपन्यास के सृजन में कथानक तत्व का स्थान महत्त्वपूर्ण हैं। इसी कारण उसें 'रीढ़ की हड्डी' उपमा दी गयी हैं। शरीर में जो स्थान रीढ की हड्डी का हैं वही उपन्यास में कथानक हैं। कथानक उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक चलनेवाली व्यवस्था हैं। नायक एवं पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट करनेवाला प्रधान तत्व कथानक हैं।

'उपन्यास' मन को आनंद देनेवाली रचना हैं। मन रंजन के साथ ज्ञान देनेवाली रचना उपन्यास हैं। अत: उसमें कल्पना और यथार्थता का मिलाफ हो। कथानक जितना विस्तृत वास्तविक होगा उपन्यास उतना ही प्रभावी बनेगा। कथानक का चुनाव इतिहास, पुरान, मानवी जीवन, लोककथा से किया जाता है। उनके लिए कोई भी विषय त्याज्य नहीं। यहाँ स्पष्ट है किसी भी घटना को आधार बनाकर कथानक लिखा जाता हैं। परंतु उससे सत्य, शिव, सुंदर की स्थापना होनी चाहिए। ऐसा कथानक उपन्यास को महान बनाने में योगदान देता हैं।

घटना और कथानक का परस्पर संबंध होना आवश्यक है क्योंकि विविध प्रकार के क्रिया कलाप ही कथानक का स्वरुप निर्धारण करते है। वही प्राण बन जाते है परंतु इससे यह अर्थ नहीं निकलता की कथानक घटनाओं का संग्रह मात्र है जैसे एक थी रानी - एक था राजा - राजा मर गया - रानी मर गयी आदि। इसे कथानक कहना उचित नहीं। अत: उपन्यास में घटनाओं की व्यवस्थित

अन्विति होनी चाहिए।

3) कथावस्तु के दो भेद -

1) प्रधान कथावस्तु, 2) गौण कथावस्तु। प्रधान कथावस्तु वह जै जो उपन्यास के आरंभ से लेकर अंत तक चलती हैं। उसका संबंध नायक से होता हैं। गौण कथाएँ उपन्यास के बीच में आती हैं और बीच मे समाप्त होती हैं तथा मुख्य कथा के विकास में सहयोग देती है। गौण कथाएँ मुख्य कथा के साथ चलती है अर्थात इन कथाओं के द्वारा चरित्रचित्रण भी होता हैं। कथावस्तु का प्रस्तुतीकरण प्रभावी शैली में किया जाता हैं। कुछ घटनाएँ प्राचीन काल से संबंधित होते हुअे पुरातन का एक अंक होती हैं। इस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासों की कथावस्तु वर्णनात्मक कथात्मक शैली मे प्रस्तुत की जाती हैं। कुछ घटनाएँ वर्तमान जीवन से संबंधित होने के कारण आत्मकथानक शैली में होती हैं। यहाँ स्पष्ट हैं उपन्यास की कथावस्तु विविध शैली में प्रस्तुत की जाती हैं।

4) कथावस्तु का महत्त्व :-

उपन्यास का महत्व कथानक पर रहता हैं। बिना कथानक से उपन्यास का अस्तित्व नहीं रहता। उपन्यासकार कथानक की कथा सूत्र कहाँ से खोजता हैं उसका ज्ञान कथानक से होता हैं। उपन्यास में आनेवाली घटनाओं को क्रमबद्धता से प्रस्तुत करना 'कथावस्तु' है। उपन्यासकार का कार्य सिर्फ मनोरंजन भी होता हैं। वास्तव में सफल उपन्यासकार वही है जो अपनी रचनाएँ बुद्धिचातुर्यद्वारा मानवजीवन का क्लिष्ट एवं जटील समस्याओं की तरफ स्थान अकर्षित करने के साथ-साथ पाठकों का मनोरंजन भी करे। उपन्यासकार सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर मानव मात्र की भावनाओं के आधारपर ही उपन्यास की निर्मिती करता है।

उपन्यास में आनेवाली घटनाओं को उपन्यासकार अपनी कल्पना से सजाता है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ-साथ सहायक कथाएँ भी चलती रहती है परंतु यह ध्यान देना आवश्यक है कि मुख्य कथा और सहायक कथा दोनों में परस्पर का मेल हो क्योंकि यदि ये कथाएँ श्रृंखलाबद्ध नहीं होती तो कथानक का सही दिशा में विकास और विस्तार नहीं होगा। कथा का विकास उपन्यास में उसी तरह

होना चाहिए जिस तरह मानव के शरीर में अंगों का विकास होता हैं।

उपन्यासकार को चाहिए की उपन्यास की कथा को स्वांत:सुखाय न लिखकर सर्व हिताय की भावना से लिखा जाय। उपन्यासकार को उपन्यास में ऐसी घटनाओं को स्थान देना चाहिए जो पाठक को कुछ देर के लिए इस मायारुपी संसार से दूर किसी ऐसे काल्पनिक लोक की तरफ खिंच ले जाये जहाँ पहुँचकर वह अपने विडंबनाओं, दू:खों, संघर्षों अभावों को कुछ समय के लिए भूल सके। आधुनिक युग के हिंदी साहित्य का मुख्य अंग उपन्यास को ही माना जाता हैं। और कथावस्तु को उपन्यास की नींव। कथावस्तु ही उपन्यास का प्राण हैं। क्योंकि आदि से अंत तक वही उपन्यास में समाया रहता हैं। कथावस्तु के महत्त्व के कारण ही उपन्यास में उसे प्रधानता मिली है। जिस उपन्यास की कथावस्तु जितनी सुसंगठित होगी, उपन्यास उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा। हमारे विचार से उपन्यासकार को चाहिए पाठकों का अपनी कथा से मनोरंजन करवावने के साथ-साथ समाज की यथार्थता का चित्रण करवाने का भी प्रयास करे, जिससे पाठकों को समाज की वास्तविकता का पता चल सके। उपन्यास की कथा को अपने ढंग से व्यक्त करनाही उपन्यासकार की प्रतिभा की कसौटी समझी जाती है, इसका भी वह उपन्यास लिखते समय स्थान रहे।

आधुनिक युग के उपन्यासों के कथावस्तु का पटल अत्यंत विस्तृत है। परिवर्तित जीवन के साथ उपन्यास का स्वरुप भी बदलता रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक, व्यंग प्रधान विषयों को लेकर रचनाएँ लिखी जा रही है। नगर, महानगर, गाँव, बस्ती, झुग्गी, झोपडी, समाज का उच्चवर्ग, दलितवर्ग, नारी बंधुआ मजदूर आदि सभी का चित्रण हो रहा है। अत: आधुनिक युग का उपन्यास बहुआयामी-बहुमुखी लगता है। पाश्चात्य विचारों का प्रभाव अनुवाद की प्रक्रिया, प्रचार माधयम एवं संचार माध्यम की सुविधा के कारण साहित्य में भी नई दिशाएँ, नई खोज की शुरुआत हो चुकी है। आलोच्य उपन्यासों में शोषित, पीडित को वाणी देने का कार्य किया है। नागार्जुन के उपन्यास के कथा पर विचार करेंगे।

रतिनाथ की चाची

नागार्जुन

रतिनाथ की चाची

सन 1948 में प्रकाशित नागार्जुन का यह प्रथम उपन्यास है। मुख्य कथानक एक ग्रामीण विधवा तथा मातृहीन रतिनाथ के दुखभरे जीवन के इर्द गिर्द समाया हुआ हैं। लेखक ने रतिनाथ को केंद्र में रखकर मिथिला प्रदेश में फैले ब्राह्मण-अब्राह्मण जाति-पाति भेद, अनमेल विवाह, युवा विधवाओं दयनीय स्थिति के साथ-साथ ग्रामीण जीवन का सामाजिक तथा आर्थिक संघर्ष उजागर किया हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित अधिकांश नारियों का जीवन वैधव्यपूर्ण हैं। भारतीय समाजव्यवस्था इन महिलाओं के प्रति कितनी क्रूर अमानवीय एवं संवेदनहीन है, यह सब वैधव्य के असीम कष्ट से जूझती हुई नारियों को देखकर ही पता लगता हैं। ''नागार्जुन के उपन्यासों की मूल प्रेरणा में कहीं न कहीं लोक और शास्त्र द्वारा प्रताडित नारी विद्यमान है और उनका संपूर्ण रचनाक्रम नारी उद्धार की प्रबल कामना से उद्वेलित हैं।''[4] इन विधवा स्त्रियों में 'रतिनाथ की चाची' की गौरी, दमयंती, सुमित्रा, चंद्रमुखी, सुशीला, 'बलचनमा' की बालचनमा की माँ तथा दादी 'नई पौध' की रामेसरी, 'दु:खमोचन' में माया आदि। इन उपन्यासों में सधवा स्त्रियोंकी भी स्थिति अनेक सामाजिक कुरुरितियों के कारण बडी ही दयनीय हैं।

'रतिनाथ की चाची' का उद्देश्य हमारे समाज में प्रताडित विधवाओं के प्रति पाठकों की सहानुभूति जागृत करना है। इस उपन्यास के केंद्र में रतिनाथ की चाची गौरी का निजी व्यक्तित्व हैं। लेखक ने विधवा ब्राह्मणी के करुण, विगलित जीवन का आँसुओं से भीगा चित्र खिंचा है। इस उपन्यास में लेखक समाज की विषमता, स्वार्थपरता और उसके बीच नारी का उत्पीडन बडे ही मार्मिक ढंग से उपस्थित करता हैं। वह मूलत: सामाजिक समस्या को ही लेकर समाज के अंतर्विरोध को स्पष्ट करता है। इसमें वह सफल भी होता हैं। देश की धरती के उत्पन्न पात्र और उसमें रहनेवाले निवासियों की वास्तविक समस्याएँ सब कुछ स्वाभाविकता की मिठास लेकर आती है। ''एक कुलीन और विपन्न को समाज के लांछन, अपमान, तिरस्कार आदि को सहन करते करते किस तरह मौत की गोद में विपदाओं से त्राण पाना पडता है। इसकी करुण कथा को सजीव और विशाद रुप में अंकित किया गया हैं।''[5] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता हैं।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास का घटनास्थल मिथिला का शुभंकरपूर हैं। शुभंकरपुर से पूरब में बलुआहा पोखर था। यह पोखर शुभंकरपुर गाँव के मालिक राजाबहादुर दुर्गानंद सिंह का था। उनकी बाईस बीघा जमीन पानी के अंदर थी। आसपास पाँच कोस में ऐसा तालाब नहीं होने से बलुआहा पोखर इलाके भर में मशहूर था। शुभंकरपुर के आस-पास जयनगर, राजनगर, मधुबनी, पंडोल, सकरी, तारसराम लेहरिया सराय, भागलपुर, तरकुलवा आदि स्टेशन थे। इस गाँव में ढाई सौ परिवारों की आबादी हैं। इनमें गरीब ही अधिक हैं। और यह गरीब दो श्रेणी में बँटे हुअे है - एक ब्राह्मण और दुसरा गैर ब्राह्मण पढे लिखे लोग शहरों में फैले है। ब्राह्मणों में विद्या का प्रसार खुब था। उनके सै परिवारों में से पंद्रह परिवार महदरिद्रों में विभाजित थे।

शुभंकरपूर में रहनेवाली रतिनाथ की चाची गौरी विधवा ब्राह्मणी हैं। गौरी को समाज में लांछन, अपमान, तिरस्कार आदि को सहन करना पडता था। गौरी का वैधव्य, हरिप्रकुल में लडकी ब्याहने का ही दुष्परिणाम था। गौरी के पिताने उसके पती वैद्यनाथ झा की कुलिनता के मोह में आकर गौरी को ब्याहा था। उसका विवाह प्रौढ उम्र के दमें के रोगी के साथ किया था जो उमानाथ और उसकी एक बहन को छोडकर स्वर्गवासी हो गया था। गौरी का बेटा बड़ा होने के बाद माँ से दूर रहता है। चार-छे महिने में वह घर आता है। गौरी के पास 'रतिनाथ' रहता था।

जयनाथ चाची का देवर हैं। उसकी भी पत्नी याने रतिनाथ की माँ मर चुकी है। ''तैंतीस साल के इस विधुर देवर के प्रति उनका वही भाव रहता हैं जो कि एक समझदार माँ का अपने बीमार बालक के प्रति रहता है।''[6]

तरुण देवर जयनाथ अपनी रुग्ण कामवासना की शिकार गौरी को बनाता हैं। और वह गर्भधारण कर लेती हैं। यही से उसके असहाय अपमानित और प्रताडित जीवन की करुण कथा शुरु होती हैं। गौरी विधवा हैं, अकिंचन है, गर्भ रहने के कारण अब वह कही मुँह दिखाने के काबिल नहीं रहती। सर्व प्रथम तो समाज पतितों की कूटनीतिक शतरंग की खिलाडिन दमयंती जो बाल विधवा होने पर रंगरेलियों से भरपुर जीवन जी चुकी है। गौरी के असहाय अवस्था का केवल उपहास ही नहीं करती वरन

उसके सामाजिक बहिष्कार का उपक्रम करती हैं। वह कहती है ''उमानाथ की माँ व्यभिचारिणी हैं, पतिता है, भ्रष्ट है, कुलटा है, छिनाल है उससे हमे किसी प्रकार का संबंध नहीं रखना चाहिए। बोलचाल बंद।'' उमानाथ की माँ का जीवन और भी अंधकारमय हो जाता हैं। भारतीय समाज जीवन में विधवा की जिंदगीपर यहाँ प्रकाश डाला है। विधवा का शोषण परिवार, समाज, रुढी परंपरा के कारण ही होता हैं। इसके मूल में विधवा का अबला होना प्रधान कारण लगता हैं। विधवा का वासना की शिकार होना शापित जीवन का प्रारंभ माना जाता हैं। उस पर नागार्जुन ने प्रकाश डाला हैं।

चाची को इस मातृहीन बालक (रतिनाथ) का बहुत ही गहरा स्नेह था। चाची के इस विपत्ति में रतिनाथ बहुत आँसू बहा करता था। वह तो खाना भी नहीं खाता था। आस-पास की महिलाओं का दल मुस्काराता और आँखें मटकाता, ताने कसके जाता तो उसकी आँखों में आँसू निकल आते थे। ''समाज व्यक्ति के प्रति इतना निठुर इतना नृशंस हो सकता है, इस अबोध को अपनी छोटी सी आयु में आज यह सत्य पहली बार भासित हुआ था।''[7] यहाँ नागार्जुन ने चाची के प्रति रतिनाथ का स्नेह का वर्णन बडे ही यथार्थ रुप में किया हैं।

रतिनाथ धार्मिक प्रवृत्ति का बालक हैं। शालीग्राम की पूजा का चित्रण यहाँ आया हैं। रतिनाथ शालीग्राम का पुजन करता हैं, चंदन रगडकर उसमें अछत भिगोकर ''अँ सहस्त्रशीर्षा ----'' आदि मंत्र पढ़कर शंख से शालीग्रामपर जल डाला और फिर नर्मदेश्वर पर फिर चंदन अच्छत, फूल वगैरह चढाये इसी तरह पुजा समाप्त की। भगवान के प्रति श्रद्धा और ईश्वर पुजा के दर्शन यहा होते हैं।

गौरी के ऐसे विपत्ति के समय जयनाथ उसे छोडकर चला गया था। गौरी घर में बैठकर तकली काटती थी तकली का प्रयोग गांधीवाद के प्रभाव का प्रतीक है। मिथिला की कुलीन ब्राह्मणियों के जीवन में इसी तकली का बहुत बडा स्थान रहा हैं। फुर्सत के वक्त स्त्रियाँ तकली के सहारे बहुत आसानी से काट लेती है। आठ-दस वर्ष की उम्र से लेकर जीवन पर्यंत तकली का और उनका साथ रहता है। इन सुक्ष्म और मनोहर सूतों का उपयोग सिर्फ जनेऊ तक सीमित रह गया हैं।

जयनाथ वापस आने पर चाची को इस मुसीबत के दिन में मायके छोडने का फैसला करता हैं। चाची को भी इसी घड़ी में अपनी माँ की याद आती हैं। उसे अपनी माँ के सरल, शीतल, दयालु स्वभाव पर बहुत भरोसा था। और वह तरलकुवाँ गाँव में अपनी माँ के पास जाती है। जयनाथ गौरी की माँ को अलग ले जाकर शांती और संकोच के साथ सारी बात समझा देता हैं। और वह वापस चला जाता हैं।

गाँव के बाहर पूरब की ओर पंद्रह साल से एक महात्मा रहते थे जिसका असली नाम किसी को मालूम नहीं था। सभी उन्हें तारा बाबा कहते थे। वह 'माईतारा, माईतारा' कहकर चिल्लाते थे। गले में हाथी दाँत के खरीदे हुअे दानों की माला थी। दाई बाँह पर बडे बडे रूद्राक्ष और एक बडासा मूँगा पहनते थे। दाढी-मूँछ बाल और नाखुन बढाये गये थे। जयनाथ की ताराबाबा पर बडी श्रद्धा थी। बिना किसी संकोच के जयनाथ ने ताराबाबा को उमानाथ की माँ के बारे में बता दिया बाबा उसे यंत्र देता है और वह भिजवाने को कहते हैं। इसी तरह अंधश्रद्धा के कारण किसी बाबा पर विश्वास रखना और मुसीबत में छुटकारा पाने के लिए किसी मंत्र कार उपयोग करना यह गाँव के लोगों के अशिक्षा का परिणाम था और बढ़ती अंधश्रद्धा का उदाहरण यहाँ मिलता है। ''नागार्जुन के उपन्यासों में वर्णित पाखंडी साधुओं एवं मठों के महतों के चित्र जनसाधारणपण पर इनके द्वारा ढाये जा रहे जुल्मों की जीवंत दास्तानें हैं।''[8] ग्राम जीवन में धर्म के साथ मठ, विहार, साधु महंत का होना समाजजीवन का प्रधान अंग बना हैं।

गौरी के पिता चुम्मनझा को पच्चीस बीघा उपजाऊ जमीन थी, पचासों आम के पेड थे। चुम्मनझा को दो लडके और दो लडकियाँ थी। अपनी इस विपत्ति काल में गौरी अपने माँ-बाप के घर आयी थी। गौरी की इस अवस्था पर उसकी माँ को बहौत दुख होता था। गौरी के इस दुख दूर करने के लिए वह भैस की बीमारी के बहाने बुधना चमार की औरत को बुलाती हैं। वह पेटगिराने में कुशल थी। गौरी की माँ ने सारी बात समझा बुझाकर चमाइन के हाथ पर पाँच-पाँच रुपये के दो नोट दिये और पाँच सात दिन के अंदर ही काम निपटाने को कहा। उस चमाइन ने सब कुछ ठिक कर दिया। गौरी की माँ

विधवा थी किंतु वह अकिंचन नहीं थी। समाजपर उसका रोब चलता था। ''गौरी की माँ समाज के लिए बाधित थी। इतना बडा कुकांड होने पर भी तरलकुवा में किसी ने गौरी की माँ को खुल्लमखुल्ला कुछ कहा नहीं।''[9] अवैध संबंध, अवैध गर्भ और विधवानारी का जीवन एक समस्या बना हैं। अवैध रुप में हमें दबाने की अमानवीय प्रथा ग्राम जीवन में पनपने लगती है। जीवन के साथ वह खिलवाड रही है। धर्म का आधार लेकर नारी शोषण किया जाता है। उपन्यासकार के शब्दों में ''समाज उन्हीं को दबाता है जो गरीब होते है शास्त्रकारों को बलि के लिए बकरे ही नजर आये। बाघ और भालू का बलिदान किसी को नहीं सूझा।''[10]

गौरी की माँ ने गर्भ गिराने के ठिक ग्यारहवे दिन सत्यनारायण की पूजा की। गाँव के सभी लोगों को आमंत्रित्र किया था। कुछ पाँच, छ लोग नहीं आये थे। उनमें तीन तो ऐसे थे जिनका इस घर से पुश्तैनी अनबन थी। बाकी दो-तीन ऐसे थे जिनका ख्याल था कि सिमरिसा घाट जाकर प्रायश्चित कर लेने के उपरांत ही सत्यनारायण ही पुजा करवानी चाहिए थी। वैदिक और पुरोहित वहाँ उपस्थित थे। पुजन के बाद कथा हो गयी। आमंत्रित में प्रसाद बाँटा गया। गाना-बजाना भी हो गया। पंद्रह ब्राह्मणों को खाने का निमंत्रण दिया था, उन्हें खिलाया गया। उसके बाद गौरी अपना भाई जयकिशोर आने से पहले अपने अपने गाँव लौट गयी। इसी तरह गाँव में पूजा पाठ का वर्णन यथार्थ रुप में आया है।

गौरी गाँव आने के बाद दमयंती, रामपुरवाली चाची, जनककिशोरी, सन्नो की माँ आदि मिलके गौरी पर ताने कसते है। उसे व्यभिचारी, पतिता, भ्रष्टा कहते हैं और सामाजिक बहिष्कार की बत करते है। इसी तरह दमयंती का चरित्र समाज में पायी जानेवाली कुटिल बुद्धि नारियों का प्रतिनिधित्व करता है। गाँव में भोला पंडित नाम का पंडित था। उसकी दौड-धूप का क्षेत्र चार जिलों तक विस्तृत था। भिक्षा, आशिर्वाद, अनुष्ठान और रिश्तेदारी के सिलसिले में प्रतिवर्ष चार-छं महिने उन्हें बाहर जाना पडता था। राजा बहादुर दुर्गानंदसिंह से लेकर बनैली के राजा कित्यीनंदसिंह तक भोला पंडित की जानपहचान थी। भागलपुर के सबसे धनी मारवाडी रायबहादुर भोलाराम तक पंडित की पहुँच थी। असमर्थ व्यक्तियों के प्रति इस ब्राह्मण के हृदय में असीम करुणा थी।

धार्मिक अंधविश्वास की आलोचना करने वाले कई प्रसंग प्रस्तुत उपन्यास में हैं। कितने ही लूले, लंगडे, अंधे अपाहिज और बूढे लोग भोला पंडित की कृपा से अधखिली कलियों - जैसे बालिकाओं को गृहलक्ष्मी के रुप में पाकर निहाल हो गये। एक-एक ब्याह में पचास-पचास रुपये पंडित के बँधे हुए थे। उमानाथ की बहन को भी इन्हीं ने पैंतालिस साल के एक महामूर्ख के चंगुल में डाला था। इसी तरह पंडित ठगने का काम कर रहा था। जयमिश्र के तीन लडके थे उन्होंने अपने तीन लडकों में से दो को अंग्रेजी शिक्षा दिलवाई थी। बडा लडका कॉलेज में प्रोफेसर था। छोटा अनुसंधान का काम कर रहा था। जयदेव मिश्र के लडके भवदेव ने बंगाली लडकी से शादी कर दी। और लडकी का बाप किरिस्तान है और अंडा खाता है। बाल बच्चे समेत इतवार के दिन गिरजा जाता है। इसी तरह शुभंकरपूर में चर्चा शुरु हो गयी। और दिन-ब-दिन चाची की कलंककथा फिकी पडने लगी। समाजपतियों ने तुलसी, ताम, गंगाजल उठाकर आपस में शपथ खायी ''यदि लडका शादी करके आया और बापने उसे अपने घर में घुसने दिया तो जयदेव के यहाँ का अन्न जल हममें से जो भी ग्रहण करे वह गो मांस खाय।''[11] इसी तरह शपथ ली गयी। गाँव में जाति-पाति धर्म के नाम पर विरोध का यथार्थ वर्णन यहाँ मिलता हैं।

गाँव वालों का विरोध बढता गया। जयदेव को प्रायश्चित करने के लिए कहा। उसने भोला पंडित की मदद ले ली। जयदेव ने उन्हें एक जोडा महिन धोती देकर चाँदी के दस रुपये दिये। भोला पंडित भ्रष्ट अनैतिक धर्मव्यवस्था का प्रतिनिधी है। धर्म के नाम अधर्म करने वाला पुरोहित रहा है। भोला पंडित लालची होने कें कारण उसने जयदेव से यह सब ले लिया। आवेश में आकर और जोरों से गर्जना करके झूठी बात को सच किया, सारा मामला ठिक कर दिया। प्रकाशचंद्र मेहता के मतानुसार -''धर्म के न्होसोन्मुखि स्वरुप को व्यंग्यात्मक रुप में प्रस्तुत करते हुअे उसे सामाजिक, आर्थिक विषमता को बनाये रखनेवाले अस्त्र के रुप में चित्रित किया है।''[12] इसी तरह अज्ञान विचार और व्यवहार का अंतर धर्म का केवल आडंबरपूर्ण स्वरुप उँच-नीच एवं जाति-पाति के भेदभावपर आधारीत कुलीनता का भाव तथा अभिजात्य दंभ इस प्रकार की अमानवीय भावना के विकास के मूल में सांपित्तक वैषम्य और समाजव्यवस्था है।

दीपावली के दिन गौरी के पति वैद्यनाथ की वर्षी पडती थी। इस अवसरपर गौरी का पुत्र उमानाथ घर आया। उमानाथ को अपने माँ के कुकांड के बारे में दमयंती से सब कुछ मालूम हो गया। उसका ग्लानि और क्षोभ के मारे दिमगा फटने लगा। आवेश और घृणा के कारण उमानाथ अपनी माँ को आजीवन घुटन, अपमान और तिरस्कारपूर्ण जीवन जीने पर बाध्य कर देता है।

उमानाथ भागलपुर से कलकत्ता चला जाता है। ट्राम कंपनी में उसे ड्राइव्हर का काम मिलता हैं। उसके पिता ने पचहत्तर रुपये में पंद्रह कट्ठा जमीन गिरवी रखी थी। उमानाथ ने छिहत्तर रुपया आठ आना मनीऑर्डर भेजकर जमीन छुडवाली। उसकी शादी महनौली के एक खेतिहार ब्राह्मण की सयानी लडकी से हो जाती हैं। माघ में गौना भी हो जाता है। उसकी पत्नी स्वस्थ और सुंदर थी। उसका नाम कमलमुखी था। एक महिने में उमानाथ ने कमलमुखी को सिखा पढ़ाकर शेर बना दिया। उसने सास से अधिक रामपुरवाली चाची का ही आदर सत्कार शुरु किया।

गाँव के मालिक रायबहादुर दुर्गानंदसिंह बडे जमीनदार थे। साथही लहजा-तगादा का भारी कार-बार भी चलाते थे। आसपास की पाँच कोस जमीनपर उनकी छत्र छाया थी। ब्याज का दर प्रतिमास डेढ रुपये सैकडा था। राजा बाहदुर पुराने अँगुठे को साल-साल नया करवाते जाते सूद भी मूल बनता जाता। चक्रवृद्धि का यह क्रम राजा बहादुर की शरीरवृद्धि के लिए रसायन का काम कर रहा था। उसने माँ के श्राद्ध पर समूचे भारत के उन पंडितों की सभा बुलवाई थी जो 'महामोपाध्याय' उपाधि से विभुषित थे। और खाने का इंतजाम भी बढ़िया किया था। जूठन की उन मिठाइयों जवार के क्षूद्रोंने कई दिन तक खाया था। और आज भी वह उल्लासित होकर वे राजाबहादुर का गुणगान कर रहे थे। सन 1937 में काँग्रेसी जमाना आ गया काँग्रेस ने प्रांतों के शासन में हाथ बाटना स्वीकार कर लिया। जनता ने युग की ओर नई आशा से देखा। मिनिस्टरी कुबूल कर लेने पर नेताओं का उत्तरदायित्व बेहद बढ गया। चुनाव के समय उन्होंने जनता से बडे-बडे वादे किये थे। जमीनदार चुनाव हार गये थे। उन्होंने काँग्रेसी मंत्रियों को धमकी दे दी - "आपका खादी का कुर्ता हम अपने खुन से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदार प्रथा उठा दीजियेगा।"[13] मंत्रियों ने किसानों की ओर दुर्लक्ष किया और जमीनदारों

की ओर ध्यान दिया। किसान संगठित होने लगे। जमीनदारशाही से सारा इलाका तंग आ गया था। शुभंकरपूर के ग्वाले सत्तर-अस्सी बीघा खेत मनसप पर जोतते थे। गाँव में से ही दो-तीन लीडर निकल आये उन्होंने किसान कुटिया बनाई। घर घर से मुठिया वसूल होने लगा। सब लोगों ने कुछ-न-कुछ दे दिया। राजा बहादुर बदहवास हो गये। उसने खेत से सौ या पचास रुपये बीघा लुटने लगा। किसान जमीन छोडने पर तैयार नहीं थे। सभा, जुलूस, दफा ऐ सौ चवालीस, गिरफ्तारी, सजा, जेल, भुखहडताल, रिहाई यह सिलसिला किसानों को ठंडा नहीं कर सका। ताराचरण द्वारा आंदोलन आगे ले लिया गया। किसानों ने कडा संघर्ष किया। अंत में किसानों की जीत होती है और खेती पर उनका अधिकार होता है। यह घटनाएँ चेतना का प्रतिक यहाँ लगता हैं। नागार्जुन संघर्ष और नई चेतना का संकेत देते उनका उद्देश्य नई चेतना के माध्यम से निम्न वर्ग को संगठित करना है। संगठन के बाद निम्नवर्ग विजयी होता है उस पर भी प्रकाश डाला है। अर्थात नागार्जुन के सभी उपन्यासों में निम्न वर्ग संघर्ष करता है और उनकी विजय होती है। सामाजिक समस्याओं से जूझनेवाले पात्र की हमेशा अपने उद्देश्य में सफल होते है। यहाँ स्पष्ट है खेतिहार मजदुर अब जाग उठा है, संघर्ष के लिए आगे बढ रहा है। और अंत में उसकी ही जीत होती है।

गाँव में उस साल आम बिल्कूल नहीं था। शादी, ब्याह, मुंडन-छेदन, उपनयन-संस्कारों और उत्सवों की धूम थी। ''शुभंकरपूर की बात लीजिए। वहाँ बाहर के नौ दुल्हे ब्याह करने आये थे, सात घरों में जनेऊ हुआ था, मूंडन-छेदन भी पाँच-सात बच्चों के हुअे थे। गौना करके चार बहुएँ आयी थी।''[14] यहाँ नागार्जुन ने शादी ब्याह के वर्णन के साथ के गाँव के प्रथाओं का वर्णन किया है।

अब उमानाथ की माँ समाज से बहिष्कृत नहीं रह गयी थी। उस कांड को लोग भुलते जा रहे थे। गाँव में नया मामला आ गया था। जयनारायण झा के छोटे भाई की शादी जयनगर के पास भुतही में हुअी थी। जयनारायण को लोग समाज का आधार मानते थे। उसके पास कुलिनता और धन था। बैठक के सामने चार बखार थे। आठ बैल और एक घोडा था। सोने के टुकडे जैसी दस बीघा खेत जमीनदार ने अपने लडकी के शादी में जयनारायण के भाई को दे दी थी। उसकी जमीनदारी के किसी

मौजे में किसान आंदोलन ने जोर पकडा - "रयत ने अपनी जोत की तीस बीघा जमीन छोडने से साफ इन्कार कर दिया मालिक उसे पडोस के किसानों के हाथ बंदोबस्त कर देना चाहता था। जो पच्चीसो वर्ष से उस जमीन को जोतते-बोते और फसल काटते आ रहे थे, वे लोग उट गये - इस पर हमारा हक है।"[15] इसी तरह आंदोलन बढ गया। सरकार ने एक सौ चालीस दफा लगाकर जमीन को लाल साफे और लंबी लाठी की अपनी निगरानी में ले लिया। किसानों ने सत्याग्रह आरंभ किया। मालिक को लठैत और पुलिसवाले मिल गये। उपर काँग्रेसी मंत्रिमंडल था, नीचे धरती माता थी। सत्याग्रही पिटने लगे तो खून से तिरंगा लाल हो उठा। इस आंदोलन में दो कुर्मियो और एक ब्राह्मण की जान गयी। किसानों को कुछ हद तक सफलता मिली। किसानों का संगठन, सत्याग्रह, आंदोलन आदि का चित्रण चेतना, जागृति का प्रतीक है। तात्कालीन घटनाओं का चित्रण करना नागार्जुन की विशेषता हैं। काँग्रेस मंत्रीमंडल का चित्रण करते हुए काँग्रेस नीतिपर प्रकाश डाला है। मंत्रियों ने अपनी पीठ कर दी किसानों की ओर मुँह कर दिया जमीनदारों की ओर दुनिया भर में बदनामी फैल गयी कि बिहार की काँग्रेस पर जमीनदारों का असर है।"[16] यह कथन इसका प्रमाण है।

इस आंदोलन में मालिक को ब्रह्म हत्या का पाप लग गया। जमीनदार बाबू ने अपना पाप धोने के लिए कर्मकांडेश्वरी वयोवृद्ध पंडित बुच्चन पाठक के आदेशानुसार कमला नदी में स्नान किया और वहीं एक पीपल के नीचे साधारण सा प्रायश्चित कर लिया। कुल-मिल के दस-बारह रुपये खर्च पडे। और दुसरी बात यह है कि कर्मकांडेश्वरी महाशय को दस कट्टा बढियाँ जमीन इस सिलसिले में मिल गयी। इसी तरह यहाँ अंधविश्वास का अच्छा चित्रण मिलता है। पंडित किस तरह प्रायश्चित करवाने के बहाने लोगों को लुटते है इसका यथार्थ चित्रण मिलता है।

चाची को संग्रहणी की बीमारी हो गयी थी। रतिनाथ अपने मामा के यहाँ मोतीहारी गया था। वह परिक्षा में मशगूल था। एक बार आकर वह दवा दे गया। कमलमुखी सांस की सेवा करती परंतु हृदय से नहीं। परिक्षा हो जाने के बाद रतिनाथ घर आया था। वह घर में मेहमान के समान था। चाची ने अपनी अंतिम इच्छा रति के पास व्यक्त की। "बछुआ कहीं कुछ हो जाय तो इस मुँह में आग

तुम्ही देना हाँ।'' चाची ने डाक्टरी दवा लेने से इन्कार कर दिया इसी बीमारी में चाची का अंत हो गया। आषाढ की पूर्णिमा के बाद रतिनाथ चाची की हड्डियाँ और राख लेकर काशी गया। अस्थि गंगा में प्रवाहित करके लौटते समय रतिनाथ के हृदय में बार-बार यही बात उठ रही थी कि अमावस के उस रात वह कौन था चाची?

उपन्यासकार नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' में गौरी के माध्यम से जो विधवा का करुणामय चित्रण कीया है वह समूचे हिंदी साहित्य में बेजोड है। तुलना की दृष्टि से कोई भी रचना उसके समकक्ष नहीं। गौरी जीवन की अंतिम सांस गिन रही है फिर भी वह रुस की विजय की कामना करती है इस बात से उसकी समाजवादी दृष्टि का परिचय मिलता है। ''नागार्जुन को स्पष्ट शब्दावली में समाजवादी विचारों का प्रचार-प्रसार करना इस रचना को कल की दृष्टि से दीन चाहे बना देता है, परंतु उनका यह प्रयास मार्क्सवादी चिंतन के गहरे प्रभाव का परिणाम है।''[17]

विधवा गौरी का चरित्र-चित्रण उपन्यासकार ने प्रगतिशील चेतना के द्वारा किया है। ''सामान्य विधवा चाची को प्रगतिशील दिखाने के प्रयास में भी उनके चरित्र में असंगति आ गई। सूत प्रतियोगिता में सर्व प्रथम पदक प्राप्त कर पच्चीय रुपये से अधिक प्राप्त न कर सकना इस पर सोचना कि गाँधीजी के चेले इस प्रकार क्यों करते है? धनी तथा निर्धन के स्वराज्य का अंतर समझना, चाची का कम्युनिस्ट होना तथा रुस के प्रति अडिग विश्वास और विजय की कामना प्रकट करना असंगत प्रतित होता है। क्योंकी वह सामान्य नारी है। इतना विवेक उसे कैसे प्राप्त हुआ ? कम्युनिस्ट पात्र के सजग तथा प्रबुद्ध दिखाने के प्रयत्न में भी चरित्र शिल्प में असंगति दोष आ गया है।''[18]

नागार्जुन के इस उपन्यास में दरभंगा आंचल के सामंती संस्कारों से युक्त मैथिली ब्राह्मणों के स्थित अनेक सामाजिक रुढियों और अप्रगतिशील विचारों का यथार्थ वर्णन किया है। कुलीन एवं अकुलीन वंशपरंपरा में जन्म से उत्पन्न समस्याएँ, अनमेल विवाह, विधवापन, वरों के क्रय-विक्रय, छुआछुत, भोज-भात आदि कई प्रसंग सामंती रुढियों को व्यक्त करते है। ग्रामीण जीवन के अनेक ऐसे दृश्य है जिनसे मिथिला आंचल कागज के पन्नो पर बोल उठा है। विभिन्न प्रकृति की ग्रामीण महिलाएँ

तथा उनकी ज्ञान गोष्टियाँ, कांस के कटोंरो पर नाचनेवाली तकलिया, सर-सर सून कातने की आवाजे, दुसरों के दुख-सुख की चर्चा, धर्म-तीर्थ, गंगा यमुना आदि की चर्चाएँ - ऐसे अनेक स्थल है जहाँ मिथिला की किसान वधुओं के यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किये गये है। इन सबके साथ रतिनाथ की चाची का पुरा सामाजिक परिवेश सामने आ गया है। जिसमें रहकर उस सरल सहृदय नारी ने अपने लांछित जीवन का भार ढोया और अंततः मृत्यु को वरण किया।

इस उपन्यास की पात्र-योजना, वातावरण निर्मिती तथा कथा-विकास में आंचलिकता का प्रभावी अंश है। प्रगतिशील लेखक नागार्जुन ने व्यंग्यपूर्ण यथार्थ शैली में सामाजिक दंभ, नैतिकता की मिथ्या परंपराओं तथा युवती विधवा के अभिशापित जीवन पर तीक्ष्ण प्रहार किये हैं। दुःखीत नारी गौरी की समाजवादी प्रवृत्ति को उजागर कर लेखक ने अपनी समाजवादी धारणा का रोपण प्रस्तुत कर दिया है। रुस की विजय की कामना पात्र पर लदा हुआ और अस्वाभाविक प्रसंग लगता है। परंतु 'रतिनाथ की चाची' आंचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं।

'रतिनाथ की चाची' चाची भतीजा का संबंध बहुत आत्मीयतापूर्ण है। गौरी रतिनाथ के लिए सबकुछ है और रतिनाथ के लिए गौरी सबकुछ। विपत्ति के अथाह समुद्र में गोते खा रही गौरी को यदि सहानुभूति मिलती है तो केवल रतिनाथ से। ''यह संबंध नागार्जुन के केवल एक ही उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' में उपलब्ध होता है। इस संबंध के विविध आयामों को प्रकट करने के लिए मानो उपन्यासकार ने अपनी संपूर्ण वेदना को ही डँडेल दिया है यही कारण है कि चाची भतीजा के ये संबंध पाठक को देर तक मुग्ध करते रहते है।''[19]

नागार्जुन के इस उपन्यास में मुख्य कथा के साथ प्रासंगिक कथाएँ भी आयी हैं। किसानों का संघर्ष, जयनाथ के इधर-उधर घुमने से संबंधित घटनाएँ, रतिनाथ का छात्र जीवन, बार्गो से उसका प्रणय, उसका ननिहाल जाना, चाची की ग्राम सेवा, उमानाथ का कलकत्ता का जीवन, मैथिल विधवा निवास की विधवा सुशीला की कथा आदि प्रासंगिक कथाएँ आयी है।

इस उपन्यास में जन-जीवन में प्रचलित अंधविश्वास, रुढी-परंपरा, अन्याय, शोषण, भौतिक सुविधाओं का आभाव, प्राकृतिक प्रकोप, अज्ञान का प्रभाव, विधवा नारी की स्थिति आदि का ग्राम जीवन में यथार्थ रुप में चित्रण आया है।

निष्कर्ष :-

गौरी के माध्यम से भारतीय गाँव की विधवा के दुख दर्द और संघर्ष की कथा आयी है। किसानों के संघर्ष का यथार्थ वर्णन आया है। धार्मिक अंधविश्वास का भी चित्रण हुआ है। गौरी भारतीय संस्कृति में पली नारी है। ग्रामीण महिला गौरी नैतिकता का श्रेष्ठ उदाहरण है। स्वयं आजीवन अपमान और घृणा के जहरिले घुँट पी रही। परंतु परिवावर की प्रतिष्ठा पर प्रश्नचिह्न नहीं लगने दिया। ग्राम्य महिला गौरी कुंठाओं में पिसती गयी परंतु विरोध नहीं किया। दु:खी गौरी की समाजवादी प्रवृत्ति को उजागर करके लेखक ने अपनी समाजवादी धारणा का रोपण प्रस्तुत किया है। सामाजिक विषमता संकीर्ण विश्वासनीयता स्वार्थ के बीच गौरी की यातना और दु:खद अंत का सजीव चित्रण हुआ है ऐसा लगता है।

नागार्जुन समाजवादी विचारों के प्रचारक है, उनके पात्र उनके विचारों के वाहक हैं। उनकी रचनाएँ मार्क्सवादी चिंतन से प्रभावित है। उनके विचारों का परिणाम है। विधवा चाची को प्रगति शील दिखाने का प्रयास है। भारतीय चाची का अभिषाप विधवा पन रहा है, उसका चित्रण प्रभावी ढंग से करने वाले श्रेष्ठ रचनाकार नागार्जुन है। अत: उनकी यह पहली कृति भी प्रथम प्रयास होते हुअे पर श्रेष्ठ रही है।

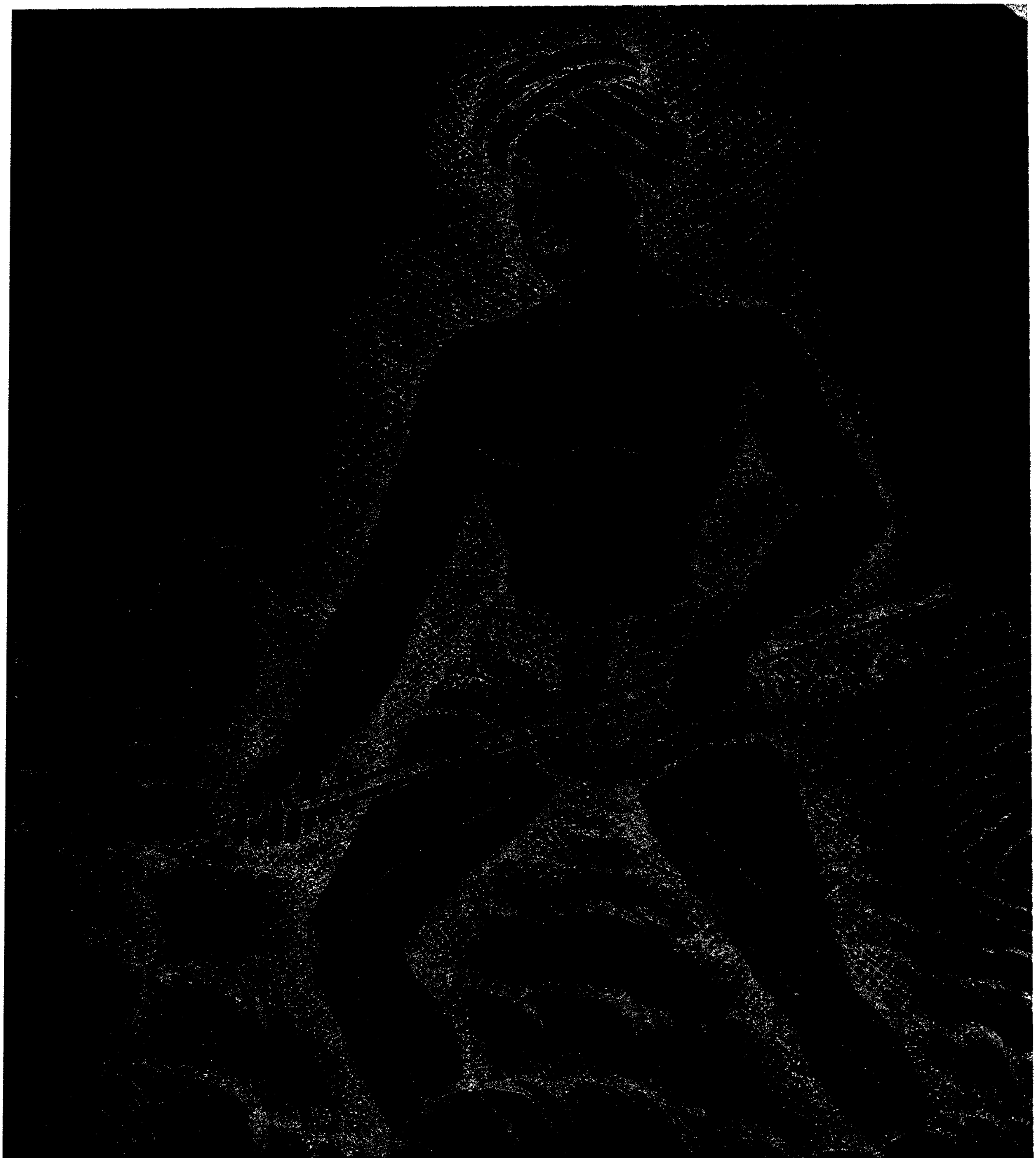

बलचनमा

नागार्जुन

बलचनमा

नागार्जुन का आंचलिक उपन्यास 'बलचनमा' (1952) मिथिला के दरभंगा जिले के ग्रामीण आंचल पर आधारित है। उपन्यास के कथानक में सन 1937 इ. तक की परिस्थितियों तथा प्रगतिशीलता का चित्रण मिलता हैं। इस उपन्यास में किसान की संघर्षपूर्ण जीवन गाथा है। दरभंगा जिले की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का चित्रांकन किया है। ग्राम्य जीवन के अभावों उसकी समस्याओं के आर्थिक पक्षपर अधिक बल देते हुअे लेखकने ग्रामजीवन से संबंधित अन्य बातों को विस्तार से प्रस्तुत किया हैं। उपन्यास का नायक बलचनमा ही है। 'बलचनमा' की उपन्यास की सारी कथा कहता है। 'बलचनमा' आत्मकथा के रुप में लिखा गया एक आंचलिक उपन्यास है। पात्रों तथा परिस्थितियों का चित्रण उसीके माध्यम से किया गया है।

'बलचनमा' नागार्जुन का चर्चित उपन्यास है, यह एक चरित्र कथा भी है और गावों की राजनैतिक, आर्थिक इतिहास कथा भी है। यह 'बलचनमा' नायक किशोर की कहानी है जो उपन्यास में क्रमश: युवा होता गया है।

डॉ. सरोजिनी त्रिपाटी के मतानुसार "बलचनमा प्रथम पुरुष में लिखा गया आत्मकथात्मक उपन्यास है।"[20] डॉ. गिरिप्रसाद शर्मा की मान्यता अलग है, वे मानते है - "वास्तव में बलचनमा की रचना प्रथम पुरुष में नहीं दुसरे मध्ययुगीन चिंतन परंपरा का व्यंग्य विद्रूप शैली में चित्रण हुआ है।"[21] डॉ. प्रेम भटनागर लिखते है, "बलचनमा पात्र मुखोद्‌गारित आत्मकथा के रुप में लिखा गया एक आँचलिक उपन्यास है।'[22]

यहाँ स्पष्ट है 'बलचनमा' आत्मकथा की शैली में लिखा, मध्ययुगीन चिंतन परंपरा का निर्वहन करनेवाली रचना है। इसमें बलचनमा निम्नवर्गिय किसान पुत्र अपनी जीवन कथा कहता है। पुरे उपन्यास में किसान की कथा और संघर्ष ही रहा है। संपूर्ण भारतीय कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचना है।

इसमें बल्चनमा निम्नवर्गीय किसान पुत्र अपनी यातना पूर्व जीवन कथा कहता है। पूरे उपन्यास में किसान की कथा और संघर्ष यात्रा ही रही है। संपूर्ण कृषक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचना है। अर्थात वह आधा खेत मजदुर और आधा किसान है। बलचनमा उन तमाम मेहनत करनेवालों का नेता है जिसकी आवाज में तीव्र विद्रोहात्मक चेतना विद्यमान हैं। सर्वहारा वर्ग को क्रांति की मशाल जलाकर भविष्य की राह दिखानेवाला गतिमान व्यक्तित्व है।

दरभंगा आंचल के रामपुर में बलचनमा का परिवार रहता था। बलचनमा, दादी, माँ और उसकी छोटी बहन रेबनी आदि परिवार के सदस्य थे। पिताजी की मौत हो चुकी थी। बलचनमा के पास दो छप्परोंवाला घर, सामने खेत और थोडी-सी जमीन थी। जिसपर बलचनमा का परिवार बसा था। यह गाँव 'जमीनदारों का गाँव' था। जमीनदार गरीबों पर अत्याचार करते थे। बलचनमा परिवार भी ऐसे ही एक छोटे जमीनदार (छोटे मालिक) के यहाँ काम करता था। दादी और माँ चाहती थी कि बलचनमा उनके यहाँ चारवाहे का काम करे।

बलचनमा का बचपन दरिद्रता, अर्थभाव, मजदुरी में व्यतीत हुआ। वह जमीनदारों की मनमानी, अत्याचार का शिकार रहा है। ग्रामजीवन में जमीनदारों का शोषण,रोब आज भी सुरक्षित है। परिणामत: गरीब लोगों का शोषण होता है। बलचनमा इसी बात का प्रमाण है।

बलचनमा को छोटे मालिक के यहाँ भैंसा चराने का काम मिल गया। मालिक उसे खाना, कपडा और दो आना देने के लिए तैयार हो गये। लेकिन बलचनमा का भैसा चराने के साथ-साथ बच्चों को खिलाना, पानी भरना, बाहर बैठक में झाडू लगाना, दुकान से सामान लाना आदि काम भी करने पडते थे। छोटे मालिक का (चौधरी) घराना भरा पुरा और अकबाली था। अलग-अलग हवेलियाँ थी। चाल-ढाल से हुकुमत की बू आती थी। इतना सब होने पर भी वे गरीब मजदूरों को कम पैसे में जादा-से-जादा काम करवा लेते थे। और उपर से गालियाँ भी देते थे। ''बलचनमा को इतना काम करने पर भी बासी पकवान, सडा आम, फटे दुध का बदबुदार छेना या झुठन की बची हुअी तरकारी ऐसा खाना मिलता था।''[23] गरीब मजदुर के शोषण का चित्रण यहाँ यथार्थ रुप में मिलता है। प्रगतिवादी नागार्जुन ने जमीनदारों की नीति पर करारा व्यंग्य किया है।

आज भी भारत में जमीनदारों की शोषण नीति हावी है। सामान्य लोगों की जमीन हडपने की प्रवृत्ति है। बलचनमा के पास बची छोटी सी जमीन पानेवाले चौधरी है। मजदुरी करना और खेती करना यही उनके जीविका का आधार था। उसे छिनने का षडयंत्र चौधरी रचाते है। उसकी दादी और माँ अन्याय सहते है लेकिन बलचनमा नहीं।

मालिक की नजर बलचनमा के छोटी सी जमीन पर थी। दादी और माँ कुछ नहीं बोल पाती थी। उत्तर बिहार के कई जिलों पर धान की फसल अच्छी होती थी। काम करने वाले मजदुरों की कमी नहीं थी। लेकिन मजदुरों को अच्छा दाना नहीं मिलता था। छोटे मालिक बलचनमा की जमीन उनसे छिनना चाहते थे। इतनी जमीन, जायदाद होने पर गरीबों के छोटे से जमीन के टुकडे के लिए जमीनदरों में लालच का भाव यहाँ दिखाई देता है। अशिक्षा अर्थाभाव के कारण जमीनदार गरीबों का शोषण करते है। परंतु नइ पिढी उसे बर्दाश्त नहीं करना चाहती - पुरानी पीढी चुपचाप सहती है। दादी इसका प्रमाण है जो नई पीढी बलचनमा का प्रतिक है। बदरी प्रसाद कहते हैं - ''जमीनदारी अमानुषिक अत्याचार का ऐसा घृणित रुप प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में नागार्जुन के बलचनमा से ही सर्वप्रथम उपलब्ध होता है।''[24] जमीनदारी के अमानवीय व्यवहार के चित्रण कों रुप अधिक तीव्र स्वर प्रधान किया है।

आंचल विशेष में अंधविश्वास के कारण भूतप्रेत पर अत्याधिक विश्वास होता है। मालिक के यहाँ मलिकाइन के मायके से साथ आयी हुओ नौकरानी सुखिया जो बड़ी मुहपढ थी। और वह बलचनमा पर रोब जमाती थी। कभी कभार वह चिग्घाड मारकर रो पडती थी और नंगी हो जाती थी। ''हाय बाप हाय बाप' करती हुओ जीभ निकालती हुओ बोलती ''ही ही ही मै काली हुँ पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ खा जाऊँगी समुचा गाँव बकरा दो बकरा ---''[25] मलिकाइन हात जोडकर उसके सामने कहती थी, ''दुहाई भगवती की सुखिया का भूत अगर ले जाइए दो कुवाँरी लडकियों को आपकी खातिर खिडपुडी खिलाऊँगी।''[26] इतना ही नहीं तो दामा ठाकुर ओझा (भूत प्रेत निकालनेवाला) को बुलाकर झाड, फूँक, पूजा, पाठ, टोना, थापर सब किया जाता था। औरा इसी अंधविश्वास का फायदा ओझा उठाते थे। अज्ञान अशिक्षा के कारण अंधविश्वास बढ रहा है। ओझा, धर्मगुरु, धार्मिक व्यक्ति, भगत इससे लाभ उठाना चाहते है। इस पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

गाँव में जाति-भेदभाव की समस्या रहती है। वैद्य, डॉक्टर, गरीब एवं छोटे जात वालों के घर जाकर बीमार व्यक्ति को देखने नहीं जाते थे। गरीब लोगों को डॉक्टर के यहाँ जाने के लिए पैसे और यातायात के साधनों की कमी थी। इसी कारण बलचनमा की दादी दवाँ के बीना मर जाती है। गरीब मजदुरों के पास फुरसद और पैसे की कमी होने से इलाज नहीं होता था।

बलचनमा मालिकों के यहाँ की गालियाँ, पिटाई, तिरस्कार, अपमान, दुतकार और फटकार आदि बातों से तंग आ गया था। वह अपनी जिंदगी से उब चुका था। बलचनमा शहर जाना चाहता था। मालिक बाबू के साथ कुछ दिन रहना चाहता था। मालिकाइन का भतिजा फूलबाबू पटना में पढ़ता था। उन्हें अपने साथ रखने के लिए किसी नौकर की जरुरत थी। वहाँ काम बर्तन-बासन माँज देना, कमरे में झाडू बहारु देना, दुकान से सिगारेट लाना और सामान की रखवाली करना यही काम था। फूलबाबू वकालत पढ़ते थे, उन्होंने एम.ए. भी किया था। फूलबाबू बडे खुश मिजाज और अच्छे व्यक्ति थे। बलचनमा फूलबाबू के साथ पटना चला जाता है, शहर में जाकर नई जिंदगी जीना तथा चौधरी के अत्याचार का अलग ढंग से अहिंसा से विरोध करना, यह बलचनमा की अपनी विशेषता दिखाई देती है। यह चेतना का ही प्रतीक है।

काँग्रेस और भारतीय ग्रामजीवन का गहरा संबंध रहा है। भारतीय ग्राम व्यवस्था 'काँग्रेसी' बन गयी थी। वह काँग्रेस गांधी की थी। साहित्य रचनाओं में इसके दर्शन होना एक प्रवृत्ति थी। नागार्जुन की रचना 'बलचनमा' इसी का प्रमाण है। काँग्रेसी लोग नमक बना-बनाकर जेल जा रहे थे। फूलबाबू के दोस्त में मोहनबाबू के यहाँ रहने के लिए गया। वह वहाँ महिना दो महिना रहा। और फूलबाबू जेल से छूअकर आगये उसी दिनों गांधीजी का बडा जोर था। धरपकड जारी थी। नमक बनाना सरकार विरोधी काम था। गांधीजी सरकार को झुकाना चाहते थे। कलकत्ता बंबई के सेठ साहुकार भी गांधीजी के पक्ष में थे। अगर सरकार झूक जायेगी तो स्वराज मिल जायेगा यही आशावाद था। सन तीस-बत्तीस में गांधीजी के हुकूम से बाबू गिरफ्तार हो रहे थे। फूलबाबू पर भी गांधीजी का प्रभाव पड़ा था। गांधीजी का भजन, छोटी पोथी पढ़ना, चरखा चलाना उनका कर्म बना। खाना-पिना भी बदल

गया था। और कॉलेज से नाम कट गया था। फूलबाबू दरभंगा जाकर कॉंग्रेस का काम करने की सोच रहे थे। आजादी के पूर्व तथा पश्चात की राजनैतिक परिस्थितियोंपर प्रकाश डालने की साहित्यकारों की प्रवृत्ति रही है। विशेषत: गांधीवादी, प्रगतिवादी सभी ऐसी रचनाएँ रही है। नागार्जुन उनमें एक है। 'बलचनमा' में इसके दर्शन होते है।

बलचनमा घर लौटकर आया। उसे अपनी बहन रेबनी की चिंता थी। क्योंकि वह अब बडी हो चुकी थी। बलचनमा चाहता था कि जल्दी ही उसकी शादी हो जाये। क्योंकि उसका गाँव जमीनदारों का गाँव था। जमीनदार बडे ही लालची थे। गाँव में छोटी उम्र में शादी होती थी। बलचनमा जमीनदार की बूरी नजर से बचने के लिए जल्दी से जल्दी रेबनी का गौना करना चाहता था। उसकी माँ और रेबनी भी घरेलू काम करने के लिए उनके यहाँ जाती थी। बलचनमा के पुरखा भी गुलामी करते थे। तब से आज तक सब यही करते आये थे। दुनिया बदल गयी मालिक बदल गया उनकी हालत बदल गयी लेकिन आज भी गरीब मजदुरों को मालिकों के सामने झुकना पडता था। उसी वक्त बेबस बलचनमा कह उठता है - ''हमारी गुलामी पर काफी असर पडा है लेकिन अभी भी मालिकों की रहन-सहन इस ढंग की रही कि रात दिन हम उनके आगे पिछे दुम हिलाते फिरते थे।''[27] जमीनदारों की दृष्टि से युवतियों की रक्षा करने के लिए उनका विवाह रचने के प्रयास माता-पिता करते थे। बलचनमा की इच्छा इसका सबूत हैं सयानी रेबनी के कारण बलचनमा का चिंतित होना ग्रामजीवन की विवशता का प्रमाण है।

बलचनमा के मालिक बडे ही रंगीली तबियत के आदमी थे। उनके मन में पाप और लालच था। उच्च वर्ग के होते हुअे भी भ्रष्ट चरित्र था। इसी वजह से बलचनमा की छोटी बहन रेबनी का छोटे मालिक अस्मत लूटने का असफल प्रयास करते थे। रेबनी बडी ही संकोचवाली लडकी थी। उसने आपने आपको छुडवा लिया। लेकिन छोटे मालिक ने गुस्से में आकर उसके माँ की पिटाई की। और हाथ पाँव बांध दिये। इसी तरह गरीब मजदुर की आवाज दबायी जाती थी। स्त्रियोंपर होनेवाले अत्याचार के विरोध में कोई आवाज उठानेवाला नहीं था। गरीब लोग अत्याचार सहकर भी अपनी

इज्जत का सौदा नहीं करते थे। इसीपर बलचनमा की माँ बलचनमा को कहती है ''बबुआ बालचन मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।''[28] इसी तरह गरीब मजदुर लोग अपनी इज्जत के लिए मालिकों के अत्याचार सहकर भी उनके विरोध में लडने की कसम खाते है।

बलचनमा पर भी छोटे मालिक ने चोरी का इल्जाम लगाया और उसके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाई। लेकिन बलचनमा अपनी माँ और बहन के अत्याचार के लिए मालिक के खिलाफ डटे रहने की सोचता है। वह इसी बारे में फूलबाबू की मदत लेने जाता है। फूलबाबू से मिलने के बाद वह आश्रम देखता है। आश्रम की जमीन दरभंगा जिले के साकीन बरहमपुरा, थाना लहरेसिराय सराय के जमीनदार बाबू की थी। उनका आम बाग एवं जंगल था। माणिक और हिराजी दो बेटे थे। माणिक जी पढने में तेज थे। बी.ए. तक पढ़ने के बाद गांधीजी के लहर में शामिल होकर पक्के काँग्रेसी हो गये थे। परिणामत: उनका नाम माणिकजी बदलकर राधाबाबू हो गया था। फूलबाबू ने बलचनमा की मुलाखात राधाबाबू से करवाई। फूलबाबू बलचनमा के लिए कुछ नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे अपने फुफा-फुफी (मालिक, मलिकाइन) को मिलकर तीन साल हो गये थे, उनका घर से रिश्ता तूट गया था। इसीलिए बलचनमा राधाबाबू से मदत माँगता है। राधाबाबू और छोटे मालिक का दुर का कोई रिश्ता था। उन्होंने एक खत मालिक को और एक दारोगाजी को लिखा। राधाबाबू की मेहरबानी से बलचनमा की परेशानी दूर हो जाती है। और छोटे मालिक को अपने किये पर पछतावा भी हो गया था। बलचनमा को सजा भी नहीं हुओ और बात जहाँ की तहाँ दब गयी। बलचनमा आश्रम में ही रहकर राधाबाबू की सेवा करने लगा। उसे उन्होंने काँग्रेस का वोलेंटियर बना दिया था। वे बलचनमा को कभी सात तो कभी आठ दस रुपये देते थे। आश्रम में बलचनपमा को अच्छा लगने लगा था। वहाँ मालिक नौकर कोई भेदभाव नहीं था। वे गरिबों के दुखदर्द समझे जाते थे। राधाबाबू आश्रम में सभी को समान मानते थे। कोई उच-निच नहीं था। कोई किसी पर रोब नहीं जमाता था। बात-चित से मालिकाना बू-बास नहीं आती थी। बलचनमा बात बात में - ''जी सरकार जी सरकार कहा करता था मुदाबाबू ने एक रोज जोर से डाँटा तब से खाली जी-जी कहने लगा।''[29] इसीसे सभी को समान मानने का अच्छा उदाहरण मिलता है।

राधाबाबू आश्रम में अपने बीबी-बच्चों को लेकर आ गये थे। उन्होंने अपने बच्चों को आश्रम के पासवाले ही स्कूल में भेजा था। स्कूल का प्राकृतिक वातावरण अच्छा था। बच्चों की कोई कमी नहीं थी। आसपास के गाँव से आकर सत्तर के लगभग विद्यार्थी वहाँ पढते थें। स्कूल का मकान खपरैल था। स्कूल में लडकियाँ भी पढने आती थीं। बाबू भैया लोग लडकियों को पढने में भर देते थे। राधाबाबू की नजर में लडका लडकी बराबर थे। गरीब लोगों का मानना था कि लडकी पढेगी तो उसकी शादी अच्छे घर हो जायेगी। उसका प्रमाण 'बलचनमा' में मिलता है - ''पढ़ती लडकी काबिल दुल्हे को अपनी ओर खिंचती हैं इससे बाप का काम हल्का होता है, शादी हुई कि पढ़ाई बंद बाप भी आँख मूँद लेता है, ससूर भी।''[30] इसी जमाने में भी लडकियों को लोग पढाना चाहते थे और लडकियाँ पढ़ भी रही थी इसका प्रमाण मिलता है।

धान की कटाई शुरु हो गयी थी। बलचनमा को राधाबाबू ने पचास रुपये नगद और दो साडियाँ जनानी और मर्दानी दिला दी। जब बलचनमा आश्रम से गाँव आ गया तो माँ ने इसे गौने के लिए तयार किया।

बलचनमा की शादी उसकी छोटी उम्र में ही हो गयी थी। लडकी अपने माँ बाप के यहाँ थी। गौने के खर्चे के लिए बलचनमा छोटे मालिक के यहाँ काम करने के लिए जाता था। सब की धान की फसल अच्छी थी। गिरद्‌ध, बनिहार जनजाती, कल्लर सभी के चेहरे पर रौनक थी। जिनकी खुद की फसल थी वे भी खुश थे और जिनकी अपनी खुद की फसल नहीं थी, वे भी खुश थे क्योंकि मजदुरी मिलेगी। गाँव में गिरस्तों का मूँडन-छेन और सुन्नत से लेकर सराघ (श्राद्‌ध) और चालिसा तक सब काम इन्हीं फसलों के भरोसे चलता था। अच्छी फसल देखकर महाजन को भी कर्ज देने में उत्साह होता था। फसल अच्छी दी तो मिन्नत मिनौती में भी सुभीता रहता था। ''काली माई को छागर की जोडी बरहमबाबा को फूल-छत्र पित्तरों की गया का पिंड, बाबा कुसेकर नाथ को घी दुध।''[31] मिन्नत माँगना फसल अच्छी होने पर देवी देवताओं को फुलपत्र, बकरा घी-दुध चढाना आदि बातों से अंधश्रद्‌धा का दर्शन होता है।

बलचनमा और रेबनी दोनो मिलकर मालिक के खेत में जाकर काम करते थे। मजुरी में उन्हें धान मिलता था। उनकी खुद की जमीन में भी अच्छी धान हुअी थी। बलचनमा की माँ ने गौने की तैयारी कर ली। घर ठिक ठाक किया। चुन्नी जो बलचनमा का दोस्त था वह बलचनमा के ससुराल जाकर गौने के लिए उन लोगों को राजी करके आ गया। गौने के दिन मामा, चुन्नी, बलचनमा पैदल चले गये। गौने के दिन दुल्हन ने पीली साडी और लाल चोली पहनी थी। तलवों में महावर के नाम पर लाल रंग अपनी गहरी लाली खिला रही थी। आँचल में धान-दूब-पान की पत्ती और साबित सुपारी और हल्दी बंधी थी। हथेली में मेहंदी लगायी थी। रस्म होने के बाद दही पकवान केरा और समाधिन के लिए साडी लहठी यह सब एक आदमी छीकोपर सब लिये हुअे था। श्यादी ब्याह में लोकगितों का समावेश होता था। गौने के समय अपनी भावधारा स्पष्ट करती हुअी यह गीत गाती हैं -

''सखि हे मजरल आमक बाग
कुहू कुहू चिकराए कोइलिया
झींगूर गावर फाग !
कंत हमर परदेस बसइ छथि
बिसरी राग अनुराग !
विधि भेल बाम, सील भेल बैरी
फूटि गेला इभाग !
सखि है मजरल आमक बाग ...... ''[32]

इसी तरह शादी ब्याह में थाट, बाँट, कपडा, खाना-पिना, रीति-रिवाज और गाना-बजाना आदि का चित्रण नागार्जुन के 'बलचनमा' उपन्यास में दिखाई देता है। उमा गगराणी के मतानुसार - ''नागार्जुन ने भावना की तीव्रता और मन के दुखदर्द को चित्रित करने के लिए लोकगितों का प्रयोग किया है।''[33]

गौने के बाद बलचनमा गाँव नहीं छोडना चाहता था। अगले वैशाख में रेबनी अपने ससुराल गयी। उस साल फसल भी खुब हुई थी। बल्लीबाबू कई बगीचे के मालिक थे। उनके बाग में बलचनमा को रखवाली का काम मिल गया। धान रोपने के मौसम में बलचनमा मजुरी का काम भी करने लगा।

गाँव में नैसर्गिक आपत्ती आ गयी थी। सभी को भुचाल का सामना करना पडा। भुचाल की वजह से मालिकों की हवेलियों में हाहाकर मचना, डेप्येटीसाहब की नयी दुल्हन दीवार गिरने की वजह से मर जाना, कई लोगों के मकान गिरना, बल्लिबाबू का घोडा दब जाना, दस कोस पश्चिम में सीतामढी में प्रलय होना आदि का भूचाल की वजह से नुकसान हो गया था। सरकारी बंगले, पोस्ट ऑफिस, थाना, कचहरी, जेल, अस्पताल, स्कूल आदी सब बेकार हो गया था। सडके फट गयी थी। रेल्वे लाईन किसी काम की नहीं रही थी। भूचाल के कारण हुओी तबाही का वर्णन नागार्जुन ने किया है। नागार्जुन के सम-सामाईक घटनाओं का उपन्यास में जिक्र किया है ऐसा यहाँ लगता है।

धीरे-धीरे भूचाल की वजह से सरकार भी संभल गयी। लिडर लोग भी दौडे, राजेंद्रबाबू की उसी समय रिहाई हो गयी। जवाहरलाल व्हॉलेंटियर बनके सीतामढी आ गये काँग्रेस ने चंदे के लिए अपील की और तीस-चालीस लाख रुपया इकठ्ठा किया। भूकंप की वजह से पीने के पानी की समस्या थी। काँग्रेस ने रिलीफ फंड खोला। उसकी तरफ से कुएँ खुदवाने के लिए लाखों की रकम बाटी गयी। फूलबाबू को अफसर बनाकर बलचनमा के गाँव भेजा गया था। लेकिन बलचनमा के गाँव का एक भी कुआँ खराब नहीं हुआ था। छोटे मालिक और बल्लि बाबू ने मुन्शी बिपिन बिहारीलाल दास से बात करके जिला काँग्रेस कमेटी को चार कुएँ खराब हो गये और बीस मकान गिरे अत: उन्हें मदद मिलनी चाहिए इस प्रकारआंदोलन पत्र भेज दिया। यहाँ स्पष्ट है नागार्जुन के उपन्यास में तात्कालीन परिस्थिति का चित्रण होता है। नेहरु, गांधी, काँग्रेस के कार्य का प्रभाव उनपर दिखाई देता है।

रिलिफ फंड की ओर से इस गाँव के लिए जो रकम मिली थी उससे थोडी ही गरीब लोगों तक पहुँची बाकी सब रकम इन्ही लोगों ने आपस में लेली। बलचनमा की अब फूलबाबू पर श्रद्धा नहीं रही और काँग्रेस के बारे में भी बलचनमा की राय बदल गयी। उसकी अब काँग्रेस पर श्रद्धा नहीं रही। ईश्वरतुल्य फूलबाबू गांधीवादी और आश्रमवादी बनकर बलचनमा की दृष्टि से हेय हो जाते है। ''फूलबाबू पर इसके बाद मुझे और असधा हो गई। काँग्रेस के बारे में सोचने लगा कि स्वराज मिलने पर बाबू भैय्या लोग आपस में ही दही मछली बाँट लेंगे जो लोग आज मालिक बने बैठे है आगे भीतर माल वही उडावेंगे। हम लोगों के हिस्से सीठी ही सीठी पडेंगी।''[34]

राधाबाबू पर बलचनमा की श्रद्‌धा बढ़ गयी थी क्योंकि वे सोशालिस्ट हो गये थे। काँग्रेस के अंदर ही इन्ही लोगों ने अलग दल बनाया था। इसमें सभी जवान लोग थे। गांधीजी से सोशालिस्टों का मेल नहीं बनता था। भुकंप आने पर नुकसान गरीबों का ही होता है। बड़े लोग नेता बीच में पैसे हडप करते है। जो भी मदद मिलती है उसमें गरीबों को कुछ नहीं मिलता। भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण यहाँ मिलता है। भ्रष्टाचार के संदर्भ मे डॉ.अनिता रावत का कथन है - ''आज सर्वत्र नौकरशाही भ्रष्टाचार, दाँवपेंच की राजनीति और नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है जिसके जिम्मेदार हमारे नेतागण है।''[35] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

महापुरा में आज भी जमीनदारी दिखाई देती है। गरीबों से अनाज हडपना, उनपर जुलुम करना, मनमानी करना, आदि प्रवृत्तियों के यहाँ दर्शन होते है। जमीनदार खान बहादुर इसका प्रमाण है। हिंदु-मुसलमान एवं सभी जाति के लोग बस्ती में थे। उपज का सोलहवाँ-बीसवाँ या दसवाँ हिस्सा मालिक वसुल करता था। लगान के तौर पर अनाज वसुल करता था। इसका चित्रण यहाँ मिलता है। ''आठ दस मौजे की मालगुजारी आती थी वह खुद ढाई तीन सौ बीघा ही रखे हुऐ थे, बाकी हजारो बीघा जमीन मनखप लगी हुई थी। मनखप समझा भैय्या ? नहीं? अरे भाई उपज का सोलहवाँ-बीसवाँ या दसवा हिस्सा मालिक वसुल करता है। जिन्सी लगान के तौर पर, एक मन बीघा दो मन बीघा या तीन मन ---- उतना अनाज या उतने की रकम मालिक के यहाँ जमा कर दो।''[36] गरीबों को फसल न होने पर भी रकम जमीनदारों को देनी पडती है जिससे उनके शोषण और आर्थिक अभाव का चित्रण यहाँ मिलता है।

महापुरा बस्ती में डॉ. रहमान मशहुर थे, उन्होंने खान बाहदुर के खिलाफ लढाई छेडी। डॉ. रहमान और राधाबाबू की पहले से ही पहचान थी। राधा बाबू ने ही डॉ. रहमान को खानबहादुर के खिलाफ लढाई छेडने की सलाह दी थी। डॉ. रहमान ने किसानों को सबकुछ समझा दिया। इलाके भर में किसानों की मिटींग बुलाई गयी। खानबहादुर के पिछे थाने हा दारोगाह, कलक्टर, जमींदार पंडित, मौलवी आदि थे। राधाबाबू भी आ गये थे। किसान एक हो गये। वहाँ के आश्रम में मिटींग थी। मिटींग

में चारसौ लोग आये थे। आश्रम के पासवाले मैदान में मिटींग नहीं हो सकी। खानबहादूर ने ऐन मौके पर अपने लठतों को तैनात करा दिया था। लेकिन लथिफ नाम के एक इमानदार आदमी ने अपनी फसल काटके उसी खेत में मिटींग लेने के लिए कहा। मिटिंग में पाँच, छ: लीडर आये थे। सभी नेताओं ने अपनी-अपनी तरफ से किसानों को संगठित होकर अपनी ताकद पहचानकर अपनी-अपनी जमीनदार डटे रहने को कहा। किसानों का संगठन होना, चेतना एवं जागृति का प्रमाण है। यह स्पष्ट होता है कि शोषित किसान जाग उठा है।

बलचनमा के बस्ती के भी पंद्रह-बीस आदमी सभा देखने आये थे। इस सभा का परिणाम रामपुर के लोगों पर भी पडने लगा। समझदार किसान दंस-पाँच ही थे। जिनका काश्तकरी हक सर्वे में कायम रहा था। आम किसान लगान देते आये थे। मुन्शी का लडका मधुबनी, दरभंगा जाने आया था। उसने खबर लायी कि अगले साल काँग्रेस लोग मिनिस्टर बन जायेंगे। अंग्रेजों की अंमलदारी उठ जायेगी और जमीनदारी भी नहीं रहेगी। धीरे-धीरे गाँव में अखबार आने लगा। पटना से सात-सात रोज पर निकलनेवाला अखबार 'क्रांति' किसान मजदुरों के बारे में लिखता था। इसी कारण किसानों में क्रांति की चिंगारी फैली जा रही थी। ''पटना से सात-सात रोज पर निकलनेवाला अखबार क्रांति किसानों और मजदुरों के बारे में खुलकर लिखता था। उसकी पाँती-पाँती से असंतोष की चिनगारी निकलती थी।''[37] अखबार की वजह से ही किसानों में लडने की जागृती पैदा होती है इसके दर्शन यहाँ मिलते है। किसान अपनी भूमि के लिए संगठित होते है।

बलचनमा भी वालंटियर बन गया था। वह किसान आंदोलन में भाग लेता है। महापुरा में एक किसान अगहन में फसल की जोर छिना झपटी में मारा जाता है। पुलिस दफा 144 तोडने के अभियोग में किसानों को गिरफ्तार करती है। बलचनमा और उसके साथियों को पिटा जाता है। बलचनमा का आक्रोश बहौत जोशिला है। यह आक्रोश अंत में विस्फोटित होता है और बलचनमा विभिन्न नेताओं के साथ किसान आंदोलन में भाग लेता है। वास्तव में भूमि संघर्ष, किसानों की

समस्याएँ, जमीनदारी प्रथा के विरुद्ध आंदोलन नागार्जुन की ही विचारधारा का प्रमाण है। जनआंदोलन का चित्रण उनके आंदोलन के प्रति विश्वास को दर्शाता है। डॉ. रामगोपाल का मानना है - ''नागार्जुन का आक्रोश, आंदोलन उसे प्रेमचंद का उत्तराधिकारी बनाता है।''[38]

'बलचनमा' उपन्यास में आदि से लेकर अंत तक किसान मजदूर पर होनेवाले अत्याचारों का वर्णन आया है। बलचनमा के पिता पर हुअे अत्याचार, खेती पर जमीनदारों की निगाहें, जमीनदारों द्वारा अत्याचार, होनेवाला अन्याय, गालियाँ, बाँसी सडा खाना आदि का वर्णन आया है। 'बलचनमा' में किसानों के आंदोलन का भी वर्णन यथार्थ रुप में आया है।

'बलचनमा' उपन्यास में किसान मजदूर के अत्याचार के साथ कई समस्याएँ भी उभरकर आयी है। उनमें अशिक्षा, अंधश्रद्धा, भ्रष्टाचार, नारी शोषण, भुकंप, रुढी परंपरा, जाति-पाति आदि है। अंधश्रद्धा में भूतप्रेत, देवी देवताओं को फूल प्रसाद चढाना आदि बाते आयी हैं। नैसर्गिक आपत्ती में भूकंप होने पर मजदुरों के नाम पर दिये गये पैसे नेता लोगों द्वारा आपस में हडप करना आदि बातें आयी है। नारी शोषण में बलचनमा की बहन रेबनी पर छोटे मालिक की बूरी नजर और उसकी माँ पर अत्याचार आदि समस्याएँ आयी है।

'बलचनमा' उपन्यास में शादी-ब्याह का वर्णन और उसी समय लोकगीतों का प्रयोग आदि का वर्णन भी आया है। 'बलचनमा' उपन्यास में मुख्य पात्र बलचनमा और मालिक, मालिकाईन, माँ, दादी, रेबनी, फूलबाबू, राधाबाबू, चुन्नी आदि गौण पात्र का चित्रण भी मिलता है। कथावस्तु में रोचकता लाने में मुख्य कथा के साथ, गौण कथा और पात्रों का अच्छा वर्णन आया है। भाषा में स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता आयी है। इसके बारे में आर्जुन जानू घरत का कथन है कि - ''पात्रानुकूल और भावानुकूल भाषा का प्रयोग करने में नागार्जुन सिद्ध हस्त है, इससे वातावरण सजीव हो गया है।''[39] मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है। ग्रामचित्रण में आँचलिक भाषा का प्रयोग बडी अच्छी तरह से किया है।

ग्रामीण परिवेश के साथ किसान - मजदुरों की स्थितियों को पुरी तरह स्पष्ट किया है। बलचनमा की झोपडी छोटा आँगन, कुआँ, विस्तृत खेत, तालाब, जमीनदारों की हवेलियाँ, आम के बगीचे, चारगाह में चरती भैंसे बकरी, हरी भरी धान खेती में काम करनेवाले किसान-मजदुर यह सारा चित्रण ग्रामजीवन की स्वाभाविकता का बखान करता है। और इसी की ओर जनसामान्य की अभावग्रस्तता दरिद्रता का एहसास भी है। 'बलचनमा' में जहाँ अभावों की कहानी मुखर गयी है वही इन अभावों में जन्म लेते हुअे छोटे छोटे सुख का भी चित्रण है।

बलचनमा की कथा का विकास अत्यंत स्वाभाविक ढंग से हुआ है। कालविपर्यय के कारण घटनाओं में तारतम्य का अभाव तो है किंतु असंगति नहीं। प्रत्येक घटना बलचनमा से संबंधित होने के कारण कथानक में एकसूत्रता बनी रहती है। बलचनमा को नागार्जुन ने प्रगतिशील संघर्ष की भावना से बुना है जो उस समय के प्रगतिशीलता को निश्चित रुप से चित्रित किया है। चरित्र प्रधान उपन्यास का नायक बलचनमा शोषण को बसूखी समझता है। उपन्यास में उसका कोई क्रमिक विकास नहीं है। वह शुरु में ही सबकुछ समझता-बुझता और स्वतंत्र निर्णय लेता रहता है। यहाँ स्पष्ट है बलचनमा की मानसिकता नहीं है बल्कि लेखक की दृष्टि है जो बलचनमा के रुप में बोलती, सोचती और कार्य करती है। अत: पठनियता की दृष्टि से 'बलचनमा' एक रोचक उपन्यास है। बदरीप्रसाद के शब्दों में - '' 'बलचनमा' हिंदी के प्रगतिवादी उपन्यास साहित्य की एक श्रेष्ठ प्रतिनिधि रचना है और नागार्जुन की कृतियों में तो वह सर्वश्रेष्ठ कृति स्विकार की गई है।''[40]

'बलचनमा' उपन्यास में स्वाभाविकता लाने के लिए आँचलिक भाषा का प्रयोग किया गया है। जैसे - बिसुक (बिचक), दुसाध (कठिन), मूल (मूर), किरापिन (कंजुस), जासती (ज्यादा), बहिया (पैश्तैनी गुलाम), आसिन (अश्विन), मलिकान (मालिकों का खानदान), सबके भङ्ग आंदोलन (सविनय आज्ञाभंग आंदोलन), खुद्दि (चावल की कनी), सितलपाटी (खजुर की पत्ते की बिनी चटाई), बहिया महतो (गुलाम और मालिक), सरसुती (सरस्वती), मलेटरी (मिलटरी), निपत्ता (लापता)।

डॉ. ललित अरोडा के मतानुसार - ''उपन्यास में आंचलिक भाषा तथा बोली का अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है जो इसकी आंचलिकता पर गर्विली मुहर लगा देती है।''[41]

निष्कर्ष :-

प्रस्तुत उपन्यास 'बलचनमा' का नायक बलचनमा खेतमजुर तथा किसान है। उसमें भारतीय किसान की चेतना है। बलचनमा जमीनदार तथा जागीरदारों के विरोध में अंत तक लडता है। क्रांति और विद्रोह की लहर उसके मन में रहती है। 'बलचनमा' उपन्यास में राजनीतिक वातावरण का प्रभाव झलकता है। जनजीवन के चित्रण में उनका रहन-सहन, खान-पान, वेशभूषा, रीतिरिवाज, लोकविश्वास, अंधश्रद्धा, परंपरा आदि का सजीव रुप चित्रित किया है।

नागार्जुन ने जमीनदारों द्वारा किसानों पर होने वाला शोषण, दमन के विरुद्ध किसानों की प्रतिहिंसा की भावना को बलचनमा के माध्यम से व्यक्त किया है। यह सच है बलचनमा समाज का प्रतिनिधी है, दीन-गरीब शोषितों में चेतना जगाता है। वर्ग संघर्ष का चित्रण करनेवाली यह रचना समाजवादी चेतना का निर्देशक है। इससे भारतीय समाजवादी दल के सिद्धांतो की अभिव्यक्ति मिलती है। अर्थात समाजवादी चेतना का भारतीय रुप ही इससे चित्रित हुआ - ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा।

यहाँ स्पष्ट समकालीन घटनाओं का यथार्थ वर्णन करते हुअे नागार्जुन ने भारतीय ग्रामजीवन का चित्रण किया है। कॉंग्रेस का आंदोलन, किसानों का संगठन, भूचाल के कारण पीडित ग्रामवासी, जमीनदारों की मनमानी, नारीशोषण, अंधश्रद्धा रुढी, परंपरा का चित्रण किया है। आजादी के आंदोलन के साथ ही साथ समाज सुधार का कार्य करनेवाली कॉंग्रेस रही है। आंदोलन के बल पर अपने हक के लिए लडनेवाला किसान जमीनदारों के शोषण के खिलाफ संघर्ष करनेवाला बलचनमा नागार्जुन के विचारों का वाहक ही है।

इससे स्पष्ट है भारतीय ग्रामजीवन की झाँकी रामपुर में दिखाई देती है तो नवयुवा के दर्शन बलचनमा में होते है, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। इसीलिए यह कहा जा सकता है - 'बलचनमा' भारतीय ग्रामजीवन का दर्शन ही है।

नागार्जुन

नयी पौध

नयी पौध

नागार्जुन का 1953 में प्रकाशित 'नई पौध' आँचलिक उपन्यास की मुख्य समस्या अनमेल विवाह की है। ग्राम आँचल में शादी की समस्या को लेकर नारी पर होने वाले अत्याचार का वर्णन किया है। मिथीला आँचल के नयी पीढी ने संघर्ष करके इस समस्या को मिटाने का सफल प्रयास किया है। नारी के अशिक्षा का फायदा लेकर लोग उसका शोषण करते है। लेकिन गाँव के शिक्षित नौजवान इकठ्टे होकर उसपर होनेवाले अत्याचार का मुकाबला करते है। इसका चित्रण नागार्जुन ने अपने उपन्यास में किया है।

'नई पौध' में लेखक की प्रगतिशील विचारधारा की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें मैथिल समाज में प्रचलित पुरानी वैवाहिक कुरीतियों तथा अनमेल विवाह के खिलाफ आवाज बुलंद की गई है। 'नई पौध' में मिथला आंचल के नौगछिया के प्रगतिशील नवयुवक है जिन्होंने नई सभ्यता और संस्कृति की रोशनी में आँखें खोली हैं। वे गाँव में होनेवाले अनमेल विवाह को रोककर यथार्थरुप में विवाह संपन्न करने की कोशिश करते है। यह कार्य करते समय ब्राह्मणों के साथ टकराहट होती है, परंतु अंत में युवकों का कार्य सफल होता है। ''वस्तुता गाँव के जडता भरे सामाजिक वातावरण को चुनौती देकर इस प्रकार का क्रांतिकारी कदम उठाया जाना नई पौध की नई दिशा का परिचायक है।''[42] यह कथानक पुराना होकर भी लेखक ने सर्वथा नया संदर्भ, नई परिस्थिति, नये वातावरण में उसे प्रस्तुत किया है।

'नई पौध' में लेखक नवीन पीढ़ी के माध्यम से चेतना का विकास करता हैं। अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध 'बमपाटी' (नवयुवक दल) विद्रोह करती है। जिससे पुरानी पीढ़ी पराजित होती है। इस प्रकार यहाँ प्राचीन मान्यता और नई विचारधाराओं का संघर्ष दिखाया है। जिसमें नई विचारों की विजय दिखाई है। नौगछिया ग्राम की यह कहानी मिथिला जनजीवन की कथा बनी है। जिसमें उनकी पुरानी मान्यता ! आचार-विचार विवाह संबंधी मान्यताएँ स्पष्ट होती है। परंतु स्वतंत्र भारत में जो प्रगतिशीलता की नई लहर फैलाने का कार्य ग्राम से हुआ। नई शिक्षा पद्धति, नई सामाजिक, राजनीतिक संस्थाएँ, समाचारपत्र के प्रभाव के कारण युवा पीढ़ी संगठित तथा संवेदनशील हो रही है,

ऐसा लगता है। इसका प्रमाण प्रस्तुत उपन्यास का ग्राम नौगाछिया है। डॉ. बेचेन शर्माजी मानते है कि, ''नागार्जुन ने मिथीला का चरित्र विकास उपस्थित किया है। सभी चरित्र मिथीला से सबद्ध है। मिथीला ग्राम जीवन से उनका इतना घनिष्ठ परिचय हम उनके प्रत्येक उपन्यास में एक ऐसा ग्रामीण भाव पाते है जो बहुत थोडे कथाकारों को सुलभ हो पाता है।''[43]

डॉ. विजयबहादुर सिंह नागार्जुन को श्रेष्ठ, सचेतामुखी, प्रगतिवादी, लेखक मानते हुअे कहते है - ''सारे प्रगतिशील लेखको में जो लेखक भारतीय जनता की चूल्हे चौके तक पहुँचा है वह यहीं है और अगर प्रगतिशीलता सिर्फ राजनीतिक दृष्टि नहीं है तो उसकी सचेतोन्मुखी प्रतिष्ठा का साहित्य नागार्जुन जैसे लोग ही लिख पा रहे है।''[44] यह कथन यहाँ यथार्थ लगता है।

'नई पौध' ग्रामों की कहानी है। इसमें भागलपुर, पूर्णिया, सौराठ, मधुबनी, दरभंगा, समस्तीपुर, तिरहुत, लहेरियासराय, मुजफ्फरपुर, नौगाछिया, सीतामढी, जनकपुर, मणिकपुर, पद्मपुरा, मिर्जा पुर, जैनगर, राजनगर की कथा रही है।

नौगाछिया गाँव में दो साल बाद शादी के दिन आये थे। जेठ का महिना था। सब लोग इसी दिनों का इंतजार कर रहे थे क्योंकि कई लोगों के लडकियों की शादी रुक गयी थी। इसी इंतजार में बहौत काम रुक गये थे। खोंखाई पंडित को सात लडकियाँ और पाँच लडके थे। रामेसरी, महेसरी, भुवनेसरी, गुनेसरी, गुंजेसरी, वानेसरी, धनेसरी। रामेसरी को छोडकर बाकी छ: बेटियों का पंडित ने ब्याहकर डाला था। उनमें चार लडकियाँ विधवा हो गयी तो एक गुंगे के पल्ले पडी। एक तो पागर हो गयी थी। इसी तरह पंडित ने अपने ही लडकियों की जिंदगी बरबाद की थी। बडी लडकी रामेसरी का विवाह अच्छा घरवार देखकर किया था। वह तेरह साल से विधवा थी। ''रामेसरी अपने अभाग पर उतना कभी नहीं रोई जितना कि बहनों की बदनसीबी पर रोती रहती थी। सभी बहने माँ-बाप को सराप दिया करती थी। कोई गूँगे पल्ले पडी थी तो कोई पाँच सौ कोस पर। उनमें से चार को भाग्य ने वैधव्य के बीहड़ जंगल में डाल दिया था। एक पगली हो गयी थी, एक को उसके आदमखोर पति ने किरासन तेल की मदद से जलाकर खाक कर डाला था।''[45] रामेसरी को बिसेसरी नामक पंद्रह साल की

काफी खुबसुरत और विवाह योग्य लडकी थी। उसने अपर प्रायमरी (दर्जा चार तक) शिक्षा लेली थी। रामेसरी अपनी लडकी को बहौत प्यार करती थी। पंडित अपनी इस नतनी (बिसेसरी) की शादी करना चाहता था।

यहाँ नारी शोषण का चित्रण मिलता है। पंडित अपनी नतनी बिसेसरी की शादी पचास-साठ साल के चतुरानन चौधरी नामक बुढे आदमी से तय कर चुके थे। वह दुल्हा पाँच बार शादी कर चुका था। वह पाँच बच्चों का पिता था। फिर भी नौ सौ रुपये देकर एक पंद्रह साल की लडकी के साथ शादी करना चाहता था। घटकराज मटुकी पाठक ने यह शादी तय की थी। रामेसरी को अपनी लडकी का यह ब्याह अच्छा नहीं लग रहा था। खोखा पंडित की इस बुरी तरकिब के खिलाफ पहला विद्रोह रामेसरी ने किया। उसने सोचा, ''दुल्हे को आने दो, उसे बुड्ढे के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेसरी मेरा नाम नहीं, एक बुड्ढा मेरी लडकी का सींथ भरेगा मुँह झुलसा मरदुए का।''[46] इसी तरह रामेसरी अपने बेटी के शादी के खिलाफ थी। बिसेसरी भी अपनी इस शादी के बारे में नाखुश थी। इसी तरह नारी के विवशता का चित्रण मिलता है। व्यवस्था विवाह संस्कार के खिलाफ रामेसरी का कार्य रहा है। लगता है नारी की रक्षक नारी ही होगी। रामेसरी का विद्रोह नारी जागृति का परिचायक है। अनमेल विवाह से विधवा समस्या पैदा होती है। अत: उसका विरोध करने से विधवा समस्या भी हल होगी।

गाँव में धीरे-धीरे प्रगति हो रही है। गाँव में नया हाईस्कूल खुल गया। अपर प्रायमरी स्कूल पहले से ही रही है और संस्कृत पाठशाला भी खुली। पढे लिखे लोग शहरों में नौकरी करते थे। सबके पास दो-दो चार-चार बीघा खेत थे। गाँव के बडे बाबू जो थे वे सरकारी नौकरी और ससुरालवालों की मेहरबानी से तरक्की कर बैठे थे। उनका गाँव के लोगों से कोई संबंध नहीं था। दफ्तरी काम करके वे अपने बंगले में वक्त काटते थे। लेकिन मामूली नौकरी पेशावाले लोगों के लिए यह संभव नहीं था। उनके लडके पास के स्कूलों में पढते थे। परिवार में हाथ बटाते थे। मैट्रिक हो जाने के बाद कई लडके मधुबनी या दरभंगा के कॉलेजों में आगे की पढ़ाई के लिए जाते थे। इन्हीं युवकों ने गाँव में पुस्तकालय की स्थापना की थी। मांग-मूंगकर किताबे इकठ्ठी की गई थी, दो-तीन अखबार भी आने लगे थे। गाँव

के बाहर मैदान में शाम को कबड्डी भी खेलते थे। "ज्यादा तो नहीं पाँच सात नौजवानों का एक गुट था। गाँव में सयाने लोग परिहास में इस गुट को 'बमपाटी' कहा करते।"[47] इसी तरह इस नौजवानों की समुचे गाँव पर धाक जम गई थी। गाँव की बलपाटी में माहे, दिगंबर, मल्लिक आदि प्रमुख थे।

गाँव का मुखियाँ चिनी और मिट्टी का तेल कंट्रोल रेट पर और वह भी समय पर कम ही लोगों को देता था। कपडे के परमिट में भी मारवाडी से साँठ-गाँठ करके मुखियाँ काफी कमाता था। बमपाटी वालों ने डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट के पास शिकायत की थी। सप्लाई इन्स्पेक्टर ने आकर मुखिया का आतंक कम कर दिया। खेल कुद, मनोरंजन, मामुली बात विचार और छोकरों की आपसी शिकायते सुलझाना आदि काम नौजवान करते थे। इसलिए कई गरीब लोग बडों की आँख बचाकर इन नौजवानों से बात विचार करने लगे थे। इनका अड्डा प्राइवेट घर में या गाँव के बाहर किसी बाग में या किसी बरगद या पीपल पाकड़ के तले जमा होता था।

यहाँ पंडित के खिलाफ नौजवानों ने जो संघर्ष किया है इसका चित्रण आया है। चतुर्भुज से खोखा पंडित का नाता था। चतुर्भुज कम उम्र मे ही मर गया था। उसकी जमीन पर पंडित की निगाहें थी। चतुर्भुज जब तक जिंदा था तब तक उसने अपनी जमीन पंडित के हाथ नहीं लगने दी। चतुर्भुज का बडा लडका माहे हिंदी मिडल और संस्कृत प्रथमा पास करके आया था। पंडित ने माहे के पिछवाडे एक गहरा गढ़ा खुदवाया और उसकी माँ के साथ झगडा करता था। माहे ने अपना दोस्त दिगंबर मल्लिक से इस बारे में सहायता ले ली। दिगंबर ने पहले मुखिया से अनुरोध किया लेकिन मुखिया से कोई काम नहीं हुआ। मल्लिक और दुसरे नौजवान चुप नहीं बैठे, उन्होंने माहे का केस थाने में दर्ज किया। और कम्युनिस्ट लिडर तेजनारायण झा उनसे भी दिगंबर मिल के आ गया और हायस्कूल और स्कूल मास्टरों को भी समस्या बताई। बूलो जो दसवी कक्षा में पढ़नेवाले युवक ने एक फक्कड पद लिखा जिसमें पंडित पर व्यंग्य कसा था। मल्लिक की आज्ञा से बूलो ने पढ़कर अपनी रचना सुनाई -

''खोखा पंडित बडे सयाने

दच्छिन पश्चिम गये कमाने

बेटा रोया बेटी रोयी

करमन इनसे छूटा कोई

चुहा मारो, करो पराश्चित

पाप हरेंगे खोखा पंडित ''48

यह पद सुनकर सब लोग हसने लगे। पंडित चिढ गये और बाहर गाँव चले गये। पंडिताइन ने बेइज्जती ना हो इसलिए गड्ढा भरवा दिया। इसी तरह पंडित के अत्याचार का संघर्ष करके नयी पीढ़ी के लडके बूढे और सयाने लोगों के प्रतिद्वंद्वी बने थे।

बिसेसरी की शादी घटकराज ने तय की थी। घटकराज को शादी तय करते वक्त पचास रुपये पंडित के यहाँ से मिले थे और दुल्हे की ओर से एक दशटक नोट ही मिला था। पंडित ने घटकराज को दुल्हे की सब जानकारी लाने को भी कहा था। इसीलिए उसे दोनो तरफ से पैसे मिले थे। ''पंडित ने घटकराज को तीन रोज से उस बूढे वर की अँतडियाँ उथेडने में लगा था और नि:संदेह इस साधना में साधक प्रवर पाठकजी महाराज को अनुपम सफलता प्राप्त हुई थी।''49 इसी तरह शादी ब्याह के मामले में घटकों बिना देखे परखे पैसे की लालच के लिए शादी ब्याह तय करते है और दोनों तरफ से पैसे ले लेते है। लडका और लडकी के पसंद और ना पसंद के बारे में उन्हें कोई लेना देना नहीं होता। इसी तरह पैसे की लालच के लिए लोग कोई भी काम करते है इसका चित्रण मिलता है।

यहाँ माँ बेटी के प्यार का चित्रण भी मिलता है। रामेसरी अपनी बेटी बिसेसरी को आँखों से ओझल नहीं होने देती थी। रामेसरी को अपनी बेटी का अनमेल ब्याह मंजुर नहीं था। रामेसरी ने अपनी बेटी को लाड प्यार से पाला था। उस पर अच्छे संस्कार किये थे। रामेसरी चाहती थी बिसेसरी का ब्याह उस बूढे के साथ ना हो, यह ब्याह वह नौजवान रोक दे। ''बडी उमरतक निपुती रहनेवाली स्त्री जिसने निष्ठा से जिस नेह-छोह से तुलसी के पौधे को पोसती है उसी तरह रामेसरी ने बिसेसरी को

पोसा था।''[50] इसी तरह रामेसरी ने विधवा होकर भी अपनी बेटी पर अच्छे शील संस्कार करके उसे लाड प्यार में पाला था। इसका चित्रण मिलता है।

गाँव के कुछ लोग जैसे मुखिया, फातुरी ठाकूर आदि लोग भी यह अनमेल ब्याह रोकने के बजाय हँसी मजाक में चर्चा करते थे। उसे बढ़ावा देते थे। उन्हें इस अनमेल ब्याह से कोई लेना देना नहीं था। गाँव की औरते भी जो खुद एक स्त्री होकर भी यह ब्याह रोकने के बजाय आपस में चर्चा करती थी और बिसेसरी के शादी पर हँसी मजाक में व्यंग्य कसती थी। वह कहती है -

'' - सुना है तुमने ?

- खोखा पंडित की नतनी का ब्याह हो रहा है।

- कहा का लडका है ?

- लडका ! हि : हि : हि : ------ लडका !''[51]

इसी तरह गाँव में लोग इकठ्ठा आकर कोई समस्या नहीं सुलझा सकते थे। बस उसी पर टिका-टिप्पणी करते थे। नारियों पर होने वाले अत्याचार का उन पर कोई असर नहीं पडता था। ग्रामवासियों की मानसिकता के यहाँ दर्शन होते है। यदी सामुहिकता के साथ समाज हित में कोई निर्णय किया जाता तो ठिक होता।

गाँव में शादी ब्याह की समस्या के साथ-साथ राजकीय और समसामाईक समस्या का चित्रण और उसपर हो रही चर्चा का चित्रण उपन्यास में मिलता है। पंडित, मुखिया, दुल्हा, ठाकुर आदि लोग पाकिस्तान और काश्मिर का प्रश्न, काँग्रेस शासन, भ्रष्टाचार आदि के बारे में भी चर्चा करते हैं। गाँव में भी कपडे के मामले में भ्रष्टाचार होता था। और अफसर लोग पैसे खाते थे, दुकानदार ही उन्हें रिश्वत देते थे। इसका उदा. यहाँ आया है। फातुरी ठाकूर इसी वक्त कपड़ा कंट्रोल की शिकायत करने लगा - ''जवाहिरलाल का भला इसमें क्या कसुर है ! अफसर साले घुस खाते है, दुकानदार उनको चाँदी सुँघा देता है बस ---।''[52] इसी तरह भ्रष्ट अधिकारी और भ्रष्ट शासन का परिचय यहाँ मिलता है।

गाँव में बिसेसरी की शादी की सब तैयारी हो गयी थी। शादी के दिन दुल्हा घोडे पर आ गया था। बिसेसरी घबरा गयी थी। सभी लोगों के लिए बाहर बैठक में कई तख्तपोशोंपर कम्बल और जाजिम बिछे थे। घरवाले और गाँववाले भी शादी में आये थे। शादी के पहले बिसेसरी को महुआ का पेड पुजा करने के लिए सुहागनी स्त्रिया ले गयी। दुल्हा बहौत सजधजकर आया था। लेकिन उसकी उम्र छिप नहीं रही थी। दुल्हा और दुल्हन के लिए खाने का इंतजाम हो चुका था। परंतु घर की सभी औरते नाखुश थी। किसी को भी बिसेसरी का दुल्हा पसंद नहीं था। और बिसेसरी तो यह चाहती थी कि किसी तरह यह शादी रुक जाय। उसकी सभी इच्छाएँ और आशाओं पर पानी फेरनेवाला था। वह कुछ नहीं कर पा रही थी। यहाँ स्पष्ट है कि लडकियों को अपनी शादी के बारे में फैसला करने का अधिकार नहीं था। बडे बूढों का फैसला ही सबकुछ था। इसी तरह बिसेसरी अपनी शादी रुकवाने के लिए कुछ नहीं कर सकती थी।

नारी की विवशता के यहाँ दर्शन होते है। अनमेल विवाह नारी के लिए एक समस्या रही है। जब तक नारी इसका विरोध नहीं करती तब तक बिसेसरी जैसी कई युवतियों की जीवन की कहानी बनेगी।

आज ग्रामों में नई विचारधाराओं का निर्माण हो रहा है। समाज सुधार की दृष्टि से कार्य कर रहा है। अन्याय, रुढी, परंपराओं का विरोध कर रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में बिसेसरी को अनमेल विवाह रोकने का कार्य युवा संगठन करता है।

नौजवानों के गुट ने यह शादी रुकवाने का सफल प्रयत्न किया है। शादी के दिन ही माहे ने आकर पंडित को समझा दिया था लेकिन पंडित ने माहे की एक नहीं सुनी। अपनी ही जिद पर आडे रहे। धिरे-धिरे एक-एक करके नौजवान इकठ्ठा होने लगे। इसमें पंडित का लडका टुनाई भी शामील था। वह मॅट्रिक में पढ़ता था। अपने पिता का यह बर्ताव उसे पसंद नहीं था। उसने शादी रुकवाने के लिए नौजवानों की मदद की। उसने माहे के कहनेपर सबको झुट ही बता दिया कि बिसेसरी को दस्त हो गया है ताकि किसी भी तरह यह शादी रुक जाये। लेकिन पंडित ने किसी की नहीं सुनी वह खुद हाथ में

लट्ठ लेकर वार करने लगा था। दिगंबर ने सारी बाते लडकों को पहले से ही बता दी थी। उन्होंने दुल्हे को वहाँ से भाग जाने के लिए दिगंबर की मदद की। ज्यादा शोर शराबा और अपनी बेइज्जती न हो इसीलिए दुल्हा चुपचाप घोडे से सीधे दरभंगा भाग या। फिर भी पंडित चुप नहीं बैठा था। दुल्हा और उसका षडयंत्र शुरु ही था। परंतु उनकी कुछ न चली। इसी तरह नौजवान लडकों ने इकठ्ठा होकर विवाह के विरोध में जुलूस निकलवा कर शादी रुकवा दी। और बिसेसरी का अनमेल ब्याह रुकवाने में सफलता प्राप्त की।

बरसात समय समय और हिसाब से आई थी। खेती भी अच्छी थी। किसानों की अच्छी खेती देखकर भविष्य की चिंता मिट चुकी थी। तीज त्यौहार आके चले गये थे। बिसेसरी की ब्याह की चिंता पंडिताइन को हो रही थी। पंडिताइन भगवान को कोसती थी। वह कहती थी - ''बिसेसरी की शादी हुई होती तो घर आँगन गीत और उछाह में आज फिर गनगना उठता मुदा विधाता ने ही जब इस छोकरी का कपार जला रखा है तो फिर नानी-नाना, मामी-मामा आखिर क्या करेंगे।''[53] इसी तरह ब्याह तुट जाने के बाद बिसेसरी की चिंता सबको लगी थी। लेकिन भगवान को दोषी मानने का उदाहरण यहाँ मिलता है।

खोखा पंडित का खानदान धर्मभीरु और पुजा पाठ परायण, विद्वान ब्राह्मणों का खानदान था। पंडित पंचदेवता का उपासक था। मंदार पहाड पर पंडित नौ दिन चलनेवाले भागवत पैर बैठ गये थे। इन्हीं दिनों गृहगिरस्ती का सारा भार बच्चों पर आ गया था। पंडित का बडा लडका गिरिजानंद हाइस्कूल में संस्कृत पढ़ाता था। मंझला लडगा दुर्गानंद वकील का मोहर्रिर था। तिसरा लडका श्रीनंदन होमियोपैथी करना चाहता था और चौथा लडका टुनाई जो मैट्रिक में था। खेती का सारा भार टुनाई पर था। माहे की भी खेती थी। आलू और तंम्बाकू की उपज अच्छी थी। उन फसलों से दो ढाई सौ का सालाना आमदनी माहे की भी थी। इसी तरह गाँव के लोग अपनी खेती पर गुजारा करते थे।

पंडित का दुसरा लडका दुर्गानंद अपने सहपाठी के साथ मधुबनी चला गया था। वह जानता था कि चतुरा चौधरी भीतर-ही-भीतर बेहद खीज गया है और बिसेसरी का ब्याह किसी और

दुल्हे से न हो उसकी कोशिश रहेगी। इसीलिए वह बेससरी को लेकिर चिंतित था। दुर्गानंद अपनी बहन की लडकी याने बिसेसरी के लिए उधर लडका ढूँढ रहा था। अगले अगहन तक वह उसकी शादी कर देना चाहता था। वह जानता था कि पिता और अपने भाईयों से यह काम नहीं होगा। इसीलिए वह कोशिश कर रहा था।

दिगंबर का ननिहाल पद्मपुरा खजउली स्टेशन से कोसभर पश्चिम था। वहाँ उसे अपनी नाना और नानी को मिलने के लिए जाना ही पडता था। दिगंबर के ननिहाल के लोग भक्ति-भावना और ईश्वर साधना करनेवाले लोग थे। पद्मपुरा के पास ही एक गाँव था मढिया। अपने मिडल स्कूल के लिए आस-पास के इलाकों में यह बस्ती बहौत दिनों से नामी थी। मिडिल के दो साल दिगंबर का यहाँ का विद्यार्थी रहा था। वहाँ उसके उन दिनों में कई साथी थे। वाचस्पति नाम का एक मित्र दिगंबर का था। उसीसे जो घनिष्ठता हुई सो हद को पार कर गयी थी। अलग रहने पर भी वर्षों तक दोनों में पत्रव्यवहार चालु था। इसी तरह यहाँ पर अच्छे दोस्त और दोस्ती का चित्रण मिलता है।

वाचस्पति की मैट्रिक के बाद पढ़ाई बंद हो गयी थी। वह सोशालिस्ट बना था। वह छः सात वर्षों में नौ बार जेल जाकर आ गया था। पिताजी के गुजर जाने के बाद माँ छोटी बहन और वाचस्पति तिनो ही थे। 43-44 में एक अंडर-ग्राऊंड सोशालिस्ट लीडर का संपर्क पाकर रात-रात वाचस्पति के जीवन ने त्याग और तपस्या की और यह कँटीली पगडण्डी पकड ली थी। वाचस्पति की बहन की शादी हो जाने के बाद उसकी माँ बिलकुल अकेली थी। लेकिन वह माँ की बात नहीं मानता था। दिगंबर और वाचस्पति की भेट हो जाती है। दिगंबर बिसेसरवाली घटना वाचस्पति को बताता है। दिगंबर वाचस्पति को बिसेसरी से शादी करने के लिए कहता है। दिगंबर बताता है कि, बिसो समझदार और बहादुर लडकी है। दिगंबर ने विश्वास से उससे कहा - "बिसेसरी बडी समझदार और बहादुर लडकी है। बोझा बनकर तुम्हारी गर्दन नहीं तोडेगी वहा साथ रखोगे और माकूल ट्रेनिंग दोगे तो अच्छी साथिन बनेगी।"[54] वाचस्पति शादी के लिए तैयार हो जाता है। लेकिन बिसेसरी से शादी करना मामूली काम नहीं था।

दुर्गानंद और दिगंबर की भेट स्टेशन पर हो जाती है। दिगंबर वाचस्पति और बिसेसरी के शादी के बारे में दुर्गानंद को बता देता है। लेकिन अनुवंशिक परंपराएँ प्रतिकूल पडने के कारण दिगंबर और दुर्गा चिंतित थे, यही कारण बिसेसरी के शादी की समस्या थी। लेकिन दुर्गानंद वाचस्पति और बिसेसरी का गोत्र देखता है और शादी के लिए अब कोई समस्या नहीं है ऐसा कहता है - ''दिगो गोत्र तो बिलकुल ठीक है। हमारी बहन का गोत्र काश्यप पडता है --- इतना तो मुझे भी मालूम है कि वत्स और काश्यप गोत्रों में ब्याह होता है।''[55] इसी तरह शादी ब्याह के मामले में परंपराओं के नुसार गोत्र देखना आदि बातों से अंधविश्वास का चित्रण यहाँ मिलता है। विवाह मन की व्यवस्था न होकर धर्म प्रधान व्यवस्था बनने से कई समस्याएँ उत्पन्न होती है इसके यहाँ दर्शन होते है।

दुर्गानंद पुजा की छुट्टी में चार रोज के लिए घर आ जाता है। वह सबको बिसेसरी के शादी के बारे में बताता है। सिर्फ पंडित को नहीं बताया जाता। बिसेसरी की शादी की बात सुनते ही सब खुश हो जाते है। दीवाली के दिन दिगंबर और दुर्गानंद पद्मपुरा में जाते है। वाचस्पति के यहाँ जाकर उसकी माँ से शादी की बात करके रिश्ता तय करते है। वाचस्पति की उम्र इक्किस बाइस साल की थी। और बिसेसरी पंद्रह साल की थी। दोनों के उम्र में ज्यादा अंतर नहीं था। इसीलिए शादी में उम्र की कोई समस्या नहीं थी। शादी कम खर्चे से और आडंबर और निहायत सादगी से होगी यह भी तय किया गया।

दिगंबर और दुर्गानंद की कडी हिदायत थी कि शादी हो जाने तक गाँव में किसी को यह बात मालूम नहीं होनी चाहिए। शादी के पहले ही दिन दिगंबर वाचस्पति को अपने घर लेके आने वाला था। फलफलहारी, पान, मिठाई इस सामग्री की जिम्मेदारी टुनाई लेने वाला था। पुरोहित का काम पंडित के बडे लडके ने ले रखा था। गाँव के गिनेचुने लोगों को ही शादी पर बुलाना था। बिसेसरी को तैयार रखने की जिम्मेदारी रामेसरी पर थी। और शादी रात के वक्त होगी आदि सब बाते तय हो गयी थी।

गाँव में कुछ लोग ऐसे भी थे जो अच्छे कामों में विघ्न डालने के बारे में साचेते है। मुखिया शादी की बात दो-तीन दिन पहले से जानता था। वह इस शादी के बारे में पंडित को बताकर

शादी रुकवाने का काम करनेवाला था। लेकिन वह अपनी बेटी कांता की वजह से भावुक होता है और पंडित से शादी के बारे में कुछ नहीं बताता। मुखिया को नयी पौध के प्रति अधिक से अधिक संवेदनशील होने के लिए उसकी एक मात्र संतान कांता ही थी जो अपने ससुराल में थी और मुखिया को उसी वक्त अपनी बेटी की याद आती है और वह बिसेसरी की शादी रुकवाने का खयाल छोड देता है।

ब्याह की सभी विधियाँ सरलता से पुरी हो जाती है। गाँव के बडे बूढो ने वर-वधु को आशिष दिया और वाचस्पति और बिसेसरी का विवाह सादगी से संपन्न हो जाता है। मिथिला में सोरठ मेलों का विवाह निश्चिति के लिए महत्व रहा है, परंतु नई पौध के लोग नया नेतृत्व ऐसी प्रथा का विरोध करता है, जिससे बिसेसरी के नाना बिसेसरी के विवाह के लिए वहाँ जाते है। परंतु सोशालिस्ट युवक से विवाह रचाकार सडी गली प्रथा, स्वार्थवृत्ति, पुरानी रीति की शोषक वृत्ति का विरोध करके नई पौध, नये विचार की स्थापना करते है।

'नई पौध' में गाँव के बडे बूढों की जिद तोडकर नौजवानों ने एक लडकी के जीवन को बरबाद होने से बचा लिया। अनमेल ब्याह की यह समस्या हमारे ग्रामीण समाज में आज भी देखने को मिलती है। इस समस्या का समाधान सिर्फ नई पिढी ही कर सकती है। नयी पिढी ही सब रुढी परंपरा और बंधन तोडकर समाज का रुप बदल सकती है। सामाजिक ही नहीं तो राजकीय समस्या भी आज के नौजवान लडके संगठित होकर अपने बलबुते पर सुलझा सकते है। इसका प्रमाण यह उपन्यास है। इस उपन्यास में अनमेल शादी के साथ अंधश्रद्धा का उदा. मिलता है। पितरपच्छ के दिन ब्राह्मणों को न्योता दिया जाता हैं। माँ, नानी, सास, दादी आदि सबको एक-एक ब्राह्मण बुलाकर खाद्य सामुग्री पत्तल पर परोसकर पितरों की तृप्ति की जाती है। और बिसेसरी के शादी के वक्त गोत्र देखना। बिसेसरी की शादी बीस या बाईस साल के दुल्हे के साथ होने के लिए बिसेसरी चाँदी की छोटी बाँसुरी कन्हैया पर चढायेगी और घर के सभी लोगों ने मन्नते माँगी थी, इसी तरह रुढी परंपरा और अंधविश्वास का चित्रण मिलता है।

मल्लिक की बहन शकुंतला सत्रह साल की थी । अब तक उसका ब्याह नहीं हुआ था। लेकिन गाँव की औरते उसका ब्याह जल्दी न होने पर ताने मारती थी। और बिसेसरी की शादी पंद्रह साल की उम्र में ही हो रही थी इसीसे अशिक्षा का प्रमाण मिलता है।

इस उपन्यास में नारी शोषण की समस्या का चित्रण यथार्थ रुप में हुआ है। खोखा पंडित की सभी लडकियों के ब्याह अच्छे घर में नहीं हुअे थे। कोई गूँगे के पल्ले पडी थी तो कोई बोडम के पल्ले तो किसी के भाग्य में वैधव्य आ गया था। इसी तरह अंधविश्वास, अशिक्षा, नारी समस्या आदि समस्याओं का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

नागार्जुन का यह उपन्यास आकार में लघु होने पर भी प्रभाव के लिहाज से बडा ही व्यापक साबित हुआ है। प्रकृति की मनोरम पृष्ठभूमि पर कथाकार ने घटनाओं का मोहक ताना-बाना बुनाया है। पात्रों में मौलिकता और रोचकता आयी है। भाषा में स्वाभाविकता और पात्रानुकूलता है। संवाद छोटे छोटे और सरल है। नागार्जुन ने इस उपन्यास में आँचलिक भाषा का प्रयोग बडी अच्छी तरह से किया है।

आँचलिक शब्द :-

मतसुन्न (मतिशुन्य), उह (समझ), ढहलेलवा (महाबुद्ध), जोतखीजी (जोतसी), टोल (मुहल्ला), टपकर (पार करके), जग (यज्ञ), मादुर (विष), कानिस्टबिल (कानस्टेबल), बुधियार (होशियार), मेकिल (मुवा+किल), सतिया (सौतेली), छड्डी (छोकरी), पलिबाड (परिवार) आदि।

उपन्यास की कहानी पुरी होकर भी नयी पृष्ठभूमि पर आधारीत है। नागार्जुन ने अनमेल विवाह इस सामाजिक समस्या पर प्रकाश डाला है। मैथिली जनजीवन प्रभावी ढंग से चित्रित हुआ है। यह कहा जाता है - ''इसमें न भद्दापन है नहीं किसी राजनीतिक या सैद्धांतिक विचारों अन्ध मोह है। कवि लेखक कलाकार का जिस प्रकार शुद्ध संकिर्णताओं से उपर उठकर जीवन में मुक्त हृदय होकर प्रवेश करके उसकी रसानुभूति करनी चाहिए वैसी दृष्टि नागार्जुन की इस उपन्यास में है।''[56]

महाविरम लोढा का कथन है - ''अनमेल विवाह की समस्या की पृष्ठभूमि पर नई पीढी और पुरानी पीढी के संघर्ष का चित्रण कर नई पीढी का विजय घोष ध्वनित करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। नये समाज की स्थापना के लिए समाजवादी चेतना का उद्‌घोष ही उपन्यास का लक्ष्य है। 'नई पौध' खोकली और सडी गली परंपराओं पर नई पीढी की विजय है और समाजवादी दृष्टिकोन का परिचय मिलता है।''[57]

रामदशरथ मिश्र के शब्दों में - ''इस उपन्यास में एक सडी गली प्रथा, स्वार्थवृत्ति और पुरानी पीढी की शोषक वासना का व्यंग चित्र उद्‌घाटित करते हुए लेखक नयी चेतना की संभावनाओं की ओर संकेत करता है।''[58] इन शब्दों में रामदशरथ मिश्र ने प्रस्तुत रचना की विशेषत: बतायी है।

नागार्जुन ने इस उपन्यास का नामकरण किसी पात्र विशेष के नामपर नहीं किया है। उन्होंने देश की नयी पौध के रुप में नवयुवकों की शक्ति को पहचाना है। मिथिला के मेलों का अपना महत्व लगता है। जहाँ विवाहच्छूक विवाह हेतु इकठ्ठा होते है। लडके लडकी के अभिभावक विवाह में शामिल होते है। यह एक अनोखी घटना है। तथा अनमेल विवाह का विरोध नवयुवकों का 'बमपाटी' नामक संघटन बनाना नई समाजव्यवस्था निर्माण में महत्त्वपूर्ण सोपान लगता है।

निष्कर्ष :-

वस्तुत: जडता भरे सामाजिक वातावरण को चुनौती देकर इसप्रकार का क्रांतिकारी कदम उठाया जाना 'नई पौध' की नयी दिशा का परिचायक है। उपन्यास की इस घटना से स्वार्थी व्यक्ति का चरित्र स्पष्ट होता है जो केवल धन प्राप्ति के लिए भेड-बकरी की तरह युवती खरिदता है। परंतु नवयुवकों के कार्य परिचय स्वरुप उसकी पराजय होती है। यह नई व्यवस्था नये मानवीय मूल्यों की दर्शक घटना है। अत: इसी दृष्टि से यह उपन्यास श्रेष्ठ रहा है।

उपन्यास की कहानी एकदम पुरानी रही है परंतु नये पात्र, नई विशेषता, नई भूमिका में सभी चित्रों का अपूर्व आकर्षण है। प्रगतिशील युवकों का विजय होना नये मानवीय मूल्यों की स्थापना ही है। 'नई पौध' प्रतिकात्मक शब्द रहा है, जिसका अर्थ 'नई युवा पीढी' है। यही पीढी समय के

अनुसार चिंतन के प्रक्रिया में गतिशील होती है, उनमें क्रांति के बीज नई विचारधारा प्रवाहित होती है। इसी कारण यह पीढी प्रगतिशील समाजवादी एवं संघर्षशील बनती जा रही है। नवीन मूल्यों की स्थापना करने का प्रयत्न नागार्जुनने किया है।

नागार्जुन ने यही संदेश दिया है कि देश का भविष्य, समाज का स्वास्थ्य एवं विकास युवाओं के हाथ में ही है। नव युवा संघटित होकर कुप्रथाओं का विरोध करेंगे तो समाज में नैतिक मुल्यों की स्थापना होगी, नये समाज की नीव डाली जायेगी। शोषित, शापित, अब की नारी की रक्षा होगी। आजादी के पश्चात परिवर्तित ग्रामजीवन में युवा संघटनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसका प्रमाण यही उपन्यास है। साधारण विवाह का प्रसंग लेकर असाधारण बात पर प्रकाश डालने का कार्य नागार्जुन ने किया है। इसी कारण 'नई पौध' एक प्रतिकात्मक रचना है। नई पौध लगाने से धीरे-धीरे उसका वटवृक्ष बनता है। उस पर संस्कार करने से वह समाज के लिए उपयुक्त बन जाता है। उसी प्रकार नागार्जुन ने बिसेसरी के विचार को लेकर नये विकास का पौधा लगाया है। नारी मुक्ति का प्रचार किया है। उसका जब वटवृक्ष बनेगा तब नारी मुक्त रहेगी। उनका विवाह के नामपर , रुढी प्रथाओं के कारण शोषण नहीं होगा। नया समाज बनाने के लिए नये पौध की जरुरत है। यही संदेश उपन्यासकार ने दिया है।

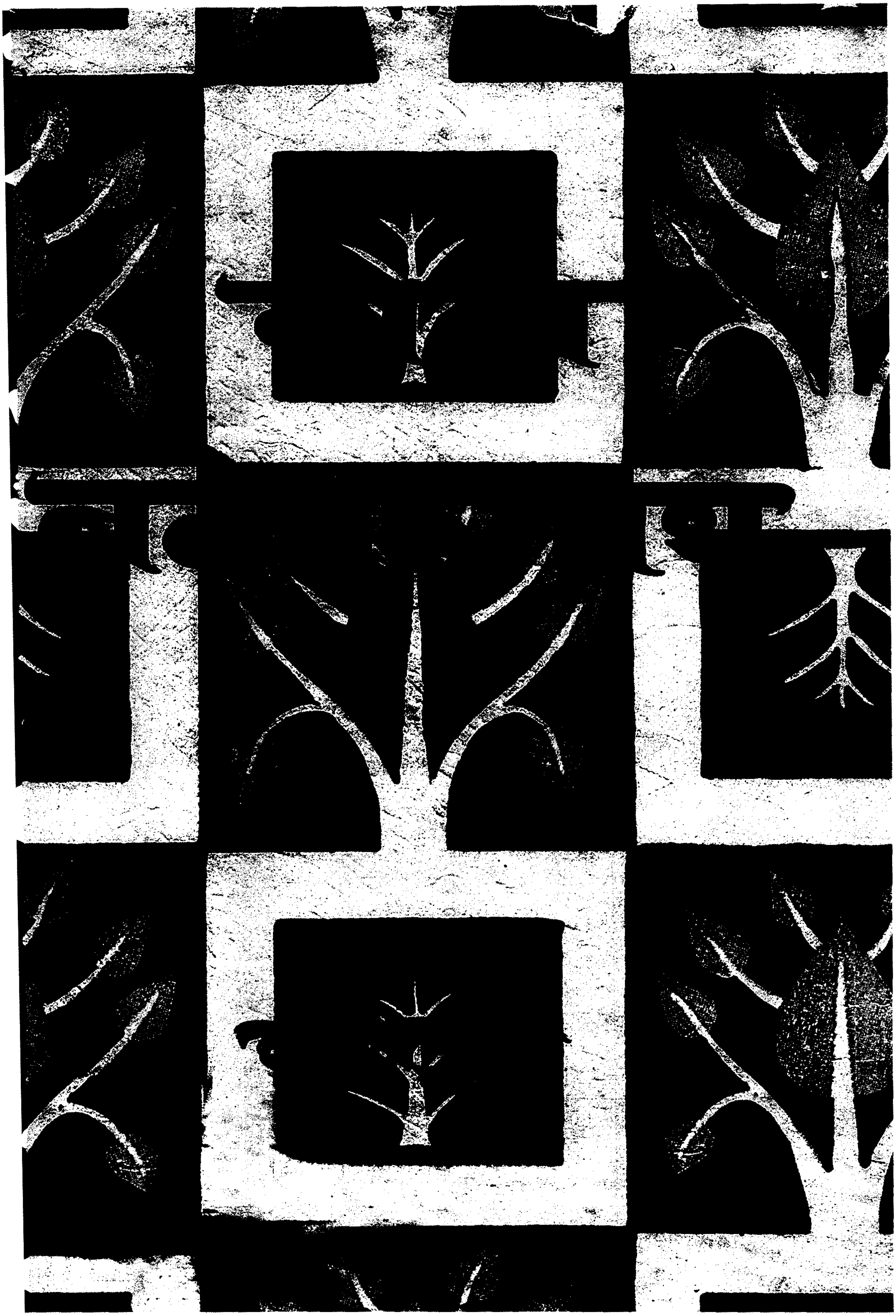

बाबा बटेसरनाथ

समाजवादी चेतना से प्रभावित उपन्यासकार नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' (1954) एक श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास है। यह उपन्यास हिंदी उपन्यास साहित्य में एक अभिनव शिल्प प्रयोग है। यह प्रयोग इसलिए अद्वितिय है कि बाबा बटेसरनाथ जो इस उपन्यास का नायक है। वह व्यक्ति नहीं एक पुराना छतनार वटवृक्ष है, जिसे सर्जनात्मक कल्पना द्वारा जीवंत व्यक्तित्व प्रदान कर दिया गया है।

'बाबा बटेसरनाथ' में ग्रामीण यथार्थ का चित्रण आया है। इसमें मिथिला आंचल के जनजीवन की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। उपन्यासकार ने अपने समय की धार्मिक और सामाजिक रुढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाकर जनसाधारण की पीडा उसके दुखदर्द, अभाव, दीनता, शोषण, दमन को यथार्थता के साथ अंकित किया है। सुरेश सिन्हा के मतानुसार - ''परस्पर समानता स्थापित होना, सबको विकास करने का समान अवसर प्राप्त होना, शोषण एवं वर्ग वैषम्य का अंत होना यही उनके (नागार्जुन) उपन्यासों का मुल स्वर है, उन्होंने ऐसी क्रांति का सुत्रपात करने का प्रयास अपनी कृतियों में किया है जिसका संबंध ग्रामजीवन से अधिक है और जिसके सफल होने में ग्रामों की रुढ़ियाँ एवं जर्जरित मान्यतायें समाप्त होगी और समाजवादी ग्रामसमाज की नव रचना होगी।''[59]

'बाबा बटेसरनाथ' में रुपडली ग्राम आंचल की चार पीढ़ीयों की कथा चित्रित है। ग्रामआंचल में जमीनदारों की शोषक वृत्ति, रीतिव्यवहार, आस्था, अनास्था, ग्रामीण मर्यादा - अमर्यादा, नैतिकता-अनैतिकता, प्राकृतिक दृश्य आदि का सफल अंकन किया है। एक सौ तीन वर्ष के वटवृक्ष के मानवीकरण द्वारा कथा चित्रित की है। उपन्यास की मुख्य कथा जैकिसुन की स्वप्न कथा के रुप में वर्णित हुई है। स्वप्न में बाबा बटेसरनाथ अपने जन्म से लेकर मृत्यु पूर्व पंद्रह दिन तक की वैयक्तिक अनुभूतियों का वर्णन करते है। साथ ही जैकिसुन के परदादा राउत के समय से लेकर सन 1942 तक की रुपडली की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दशा का संस्मरण विश्वसनीयता से वर्णित किया है।

वटवृक्ष ने गाँव में स्वार्थी शासन, जमीनदारी उन्मुलन, प्रथा, परंपरा, अंधश्रद्धा, उपासना पद्धति, अकाल के दिन आदि की दर्दभरी व्यंग्यात्मक कहानी सुनाई है। रुपडली गाँव के लोगों की परंपरागत अस्थाओं को हमारे सम्मुख उपस्थित किया है।

'बाबा बटेसरनाथ' में साम्राज्यवादी शोषण नीतियों का वर्णन आया है। इसमें अंग्रेजों की शोषण नीति, उनके द्वारा ढ़ाये जुल्मों का चित्रण हुआ है। समय की दृष्टि से भी यह उपन्यास ही एक मात्र ऐसा उपन्यास है, जो एक लंबे कालखंड को समेटता है और अंग्रेजी उपनिवेशवाद की शोषण की कथा कहता है। अंग्रेजो द्वारा शोषण तथा अत्याचारों की कहानियाँ उपन्यासकार ने वटवृक्ष के द्वारा कहलवायी है।

दरभंगा जिले में रुपडली एक छोटी बस्ती थी। तीन सौ परिवार थे। खानेवाले मुँहों की तादाद ढ़ाई हजार थी। उनमें ब्राह्मण, रजपूत, भूमिदार थे। बाकी आबादी ग्वालों, अहीरों, धानुकों और मोमिनों की थी। दो घर चमारों के और एक पारसियों का परिवार था। बडी जातिवालों के पास निर्वाह योग्य जमीने थी। ग्वालों और मोमिनों के भी थोडे बहोत खेत थे। साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनका गुजारा मजदुरी पर निर्भर था। काम के लिए यह लोग पडोस के गाँवों और शहरों में जाकर कुलीगीरी या मामूली काम करके अपने परिवार की जीविका चलाते। इस इलाके में दो शुगर फॅक्टरियाँ, रेल्वे जंक्शन भी था। खानदानी जमीनदरों की सतगामा और परसादीपुर जैसी दो बडी बस्तियाँ थी। एक मिडल स्कुल और एक संस्कृत पाठशाला थी। यहाँ स्पष्ट है कि रुपडली गाँव में विविधता है, अनेक धर्मो, जातियों, प्रवृत्तियों के लोग निवास करते है। जमीनदारों के साथ मजदुर भी रहे है। उसके मूल में उपन्यासकार का विविधता में एकता दिखाना लक्ष्य रहा है।

जैकिसुन राउत का परदादा तीस-बत्तीस वर्षो की आयुतक निपुती था। अपने बाद अपना नाम किसी तरह जीवित रखने की लालसा में उसने बरगद का पौधा लगाया था। भारतीय ग्रामजीवन में अपने परिवार, कुल वंश, चलाने की बात चलती है, अर्थात हावी भी है। हर एक की अपना कुल चलाने की प्रकृति रही है। उस पर भी नागार्जुन ने प्रकाश डाला है। जैकिसुन के दादा इसी

बात का प्रमाण है। कुल वृद्‌धि बेटे से न होकर तो वृक्ष लगाकर वृक्ष को बेटा मानकर रक्षा करने की नयी बात उपन्यासकार ने स्पष्ट की है। यह एक नया दृष्टिकोण रहा है जो आज भी सही आदर्श लगता है। भविष्यद्रष्टा नागार्जुन के यहाँ दर्शन होते है।

जैकिसुन का दादा अधिकलाल राउत तथा बाप जाणू राउत इस बरगद की अर्थात बटेसरनाथ की तनमन से सेवा करते थे। जैकिसिन राउत भी उसे अपने परिवार का सदस्य मानता था। बटेसरनाथ की छाँव में विश्राम करने गाँव के सभी लोग आते थे। ''घने पत्तों, गुथी टहनियों और आडी तिरछी डालोंवाला यह शांतिनिकेतन था ही ऐसा कि हर तरह लोग आ-जाकर उसका आश्रय लेते।''[60] इस पेड की छाँव में खुशी में पागल आदमी आते, विपत्ति कारा बेचारा प्रेमी, प्रेमिका आती, चोर आते, स्कूली लडके, गरीब, किसान, विधवा, अछूत आदि लोग बाबा बटेसर के पास आकर सुख-दुख बाँट लेता था। कई वर्षों पहले भूकंप ने उसे टेढा कर दिया था। तब से वह पूरी तरह लोगों को अपनी छाँव नहीं दे पाता था। फिर भी लोगों की ममता कम नहीं हुई थी बल्कि बढ़ गई थी। इसी तरह एक पेड के प्रति लोगों के मन में ममता और स्नेह का भाव रहा है उसके दर्शन होते है।

सरकार ने जब जमीनदारी - उन्मुलन प्रारंभ किया तब जमीनदारों ने सार्वजनिक उपयोग की भूमियों को जैसे लालची लोगों ने राजा बहादुर से बरगदवादी जमीन और पुरानी पोखर चूपचाप बंदोबस्त में ले ली। गाँववाले क्रोध और घृणा से सुलग उठे थे। टुनाई और जैनारायण इस बरगद को कटवाना चाहते थे। गाँव के दो-तीन जवान थाना, अदालत-कचहरी काँग्रेस कमेटी - असेंब्ली पार्लियामेंट में जाकर बडी दौड धूप की। लेकिन उसका कोई उपयोग नहीं हुआ। कोई भी मदद के लिए तैयार नहीं था। इसीलिए नागार्जुन कहते है - ''क्या उपर ! क्या नीचे सब जगह लाल फीता सचाई और न्याय के गले को कसे हुअे था। नेताओं का आश्वासन एक ओर और नौकरशाहों की मनमानी दुसरी ओर जमीदार की तिकडम एक ओर और जनसाधारण की बेबसी दुसरी ओर --- सिर्फ उत्साह भला क्या कर लेगा!''[61] यहाँ भ्रष्ट शासन व्यवस्थापर, राजनीतिपर, जमीनदारी और नौकरशाहीपर नागार्जुन ने व्यंग्य किया है।

जैकिसुन बरगद के पेड को जबसे छोटा था तबसे देख रहा था। पेड कटवाने की बात सुनते ही उसका तो कलेजा फटने लगा था। दिनभर वह दोस्तों के साथ भटक रहा और रात में बरगद के नीचे आकर लेट गया। बटेसरनाथ के बारे में साचेते सोचते उसका दिमाग भन्ना उठा। उसका मन चिंता के घने जाल में खो गया और वह बरगद के नीचे ही सो गया। कुछ देर बाद उसके दो साथी आ गये और वे भी वही सो गये।

रात के डेढ़ पहर बीत चुकने के बाद शाखाओं की घनी हरी झुरमटों में से बड़े बड़े सफेद बालों वाला एक विशालकाय मानव जैकिसुन के सपने मे आया। यह विशालकाय मानव इसी बरगद का मानवी अवतार 'बाबा बटेसरनाथ' था। बाबा जैकिसुन को बताता है कि उसे मृत्यु का भय नहीं है, व्ह परोपकार के लिए मृत्यु की कथा को सुनाता है, साथ में रुपडली आँचल की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक कथा भी सुनाता है।

प्रा. अर्जुन जानू घरत के मतानुसार - ''बाबा बटेसरनाथ आत्मनिवेदनात्मक उपन्यास है। मानवी रुप धारी वटवृक्ष जैकिसुन को स्वप्नकथा में अपनी कहानी के साथ आत बीती भी तो जग बीती का एक अंश होता है। के अनुसार पूरे आँचल की कहानी सुनाता है।''[62]

प्रथम बाबा बटेसरनाथ ने अपने जन्म की कथा सुनाई। रुपडली से दो कोस दूर शिवजी के पुराने मंदिर की दीवार में उसका जन्म हुआ था। एक दिन वैजनाथ धाम का एक पंडा मंदिर की मलिकाइन से मिलने आया उसने दीवार में दरार देखी तो खेद व्यक्त किया। मंदिर की मलिकाइन ने इसकी मरम्मत करवाई। उन्होंने भीतर से इटे हटाकर दीवार को पुख्ता किया और पौधे को वहाँ से निकालकर मंदिर के पीछे लगा दिया। मंदिर के साथ पौधे का संबंध जोडकर धार्मिकता, भावुकता को स्पष्ट किया है। अर्थात पौधे को भगवान का प्रसाद माना है।

जैकिसुन का परदादा शिवजी का भक्त था। वह हर सोमवार को उस मंदिर के दर्शन करने जाता था। वह बहोत दिनों से बरगद का एक बिरवा खोज रहा था। एक दिन उसने पूजारी से वह बिरवा मांग लिया। राउत ने नैयायिक प्रवर 'तर्क पंचानन' चंद्रमणि मिश्र को बुलाकर बरगद के बिरवे

को आशिर्वाद देने की प्रार्थना की। पंडितजी ने मंत्र पढ़कर आशिर्वाद दिया। और परदादा को भी कहा कि 'तु अवश्य पुत्र पौत्र का मुँह देखेगा'। परदादा ने पंडितजी को धोती देकर विदा किया और बरगद को रज बाँध पर लगा दिया। यहाँ उनकी धार्मिकता का परिचय मिलता है। बूढे पंडितराज के आशिर्वाद चार साल फलद्रुप हुये और दादा अधिकलाल राउत का जन्म हुआ।

अपने जन्म की कथा सुनाकर बाबा ने जमीनदारी उन्मूलन की कथा प्रारंभ की। सरकार ने जमीनदारी उन्मुलन शुरु किया तो जाते जाते जमीनदारी चाँदी काट रहे थे। घोडे के किंमत पर हाथी बेच रहे थे। जमीनदारों के अत्याचारों के किस्सें सुनाते समय बाबा ने राजा के मझले कुमार की शादी की कहानी सुनाई। बारात राजमार्ग से गुजर रही थी। कंधोंपर बाँस रखकर सोलह बेगार एक तख्तपोश ढोये जा रहे थे। उस पर दरी और जमीन बिछी थी। मय साज-बाज के एक रंडी उस तख्तपोश पर नाच रही थी। "उच्च वर्ग के शोषण का इससे अधिक अमानवीय स्वरुप और क्या हो सकता है। इनके लिए पतुरिया का नाच सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतिक है लेकिन बोझ के निचे दबे मजदुर तो, जैसे इनके लिए मानविय आकृतियाँ नहीं मात्र जड वस्तु रह गयी है।"[63] नागार्जुन ने यहाँ उच्चवर्ग के शादी ब्याह का वर्णन बटेसरनाथ द्वारा बडा ही यथार्थ किया है। जमीनदार बेगारों का शोषण करते थे। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उनका इस्तेमाल करते थे। बाबा बटेसरनाथ कहता है - "सौ वर्ष पहले दरअसल अपने इन इलाकों में जमीनदार सर्वेसर्वा हुआ करता था। रियाया से बेठ बेगार लेना उसका सहज अधिकार था --वह रोब ! वह दबदबा ! वह अकड ! वह शान ! वह तानाशाही वह जोर ! वह जुलूम ! क्यां बताऊँ बेटा ?"[64] इसी तरह जमीनदारी सत्ता, लोगों से बेगार लेना छोटी औकात के और नीच जात के लोगों को किडे मकोडे समझना आदि का यथार्थ वर्णन आया है।

शत्रुमर्दनराय उँचे हैसियत का एक गृहस्थ था। वह जीवनाथ का दादा था। जीवनाथ के दादा शत्रुमर्दनराय ने जमीनदारों के सामने हार नहीं मानी थी। शत्रुमर्दनराय के बाप ने राजा बहादुर रामदत्त सिंह से तीस रुपये सूद पर लिये थे। उसके बाप ने कर्ज की रक्कम अदा नहीं की थी। चंद्रमणि का छोटा पोता बलिभद्द्र अपने नाना और भाई के बलपर लूच्चों का सरगना बना था। गाँव की पंचायत ने

एक बार उसे दो रुपये जुरमाना किया था। शत्रुमर्दनराय को पंचायत का मुखिया समझा जाता था। बलिभद्दर ने शत्रुमर्दन के खिलाफ मालिक के कान भर दिये। अत: रायजी को राजबहादुर के सामने हाजिर किया गया। उसने रकम के बदले जमीन कबाला कर लेने की प्रार्थना की अथवा दो महिने की मुहलत माँग ली। परंतु राजाबहादुर ने उसकी एक भी नहीं सुनी। उसे आँगन में खडा कर लाल चींटोवाला घोसला उसके माथे पर फोड दिया। हजारों की तादाद में चींटे उसकी देह पर फैल गये। वह असल में रजपूत था। उसने सबकुछ सहन किया परंतु माफी नहीं माँगी। ''नागार्जुन ने अपनी कृतियों में जमीनदारों के शोषण की निर्ममता और क्रूरता के लोमहर्षक दृश्य अंकित किये है। उनके उपन्यासों के अध्ययन से ऐसा लगता है कि दमन और शोषण का जो कुचक्र जमीनदारों ने चलाया था वह अंतहीन प्रक्रिया के रुप में आज भी विद्‌यमान है।''[65] इसी तरह जमीनदारों के शोषण का चित्रण मिलता हैं। जमीनदारों का शोषण एक प्राचीन काल से लेकर आज तक चली आ रही समस्या है। आजादी के बाद गुलामी की समस्या नहीं रही। जमीनदारों की प्रवृत्ति बाकी रही है। उपन्यासकार ने उसपर प्रकाश डाला है।

गाँवों में समस्याओं का पहिया तो चलता ही रहता है। नैसर्गिक आपत्ति में अकाल की समस्या बहौत बडी होती है। हिजरी सन 1280 में भारी अकाल पडा था। पिछले कुछ वर्षों से फसल मामुली आ रही थी। इस साल धान की मुख्य अगहनी फसल बिलकुल चौपट हो गयी थी। उस साल बारिश भी नहीं हुई। ''उस वर्ष रबी की फसल भी दगा दे गयी थी। आम भी नहीं फले थे। वैशाख गया जेठ गया और आषाढ भी बीता लेकिन इंद्रदेव का दिल नहीं पसीजा, नहीं पसीजा ! नहीं पसीजा !!''[66] इसी तरह इंद्रदेव को प्रसन्न करने के लिए ब्राह्मणों ने ग्यारह लाख शिवलिंग बनाये और उसकी सामुहिक पूजा की ग्वालों, अहीरों, और धनुकों ने यही चार दिनों तक भूइयाँ महाराज का पुजन किया, स्त्रियों ने मेंढक पकड़कर ओखलियों में मुसलों से कुचल दिये। पंडित ने चंडी पाठ किये परंतु बारीश नहीं हुआ। इसी समय मामूली हैसियत के किसान शकरकंद खा रहे थे। बरखा के लिए ग्रामवासियों के द्‌वारा किये गये प्रयास उनके अज्ञान और अंधश्रद्‌धा के ही दर्शन है। खेत-मजदुर और जनबनिहार आम की सूखी गुठलियाँ खाकर जीवित थे। तालाबों का पानी घटने लगा तो लोग मछलियाँ और कछुओं पर टूट पडे।

लोग इट का चुरन बनाकर उसका महिन पिसान तैयार कर लेते आम, जामुन, आमरुद, इमली आदि की पत्तियाँ उबालकर पीस ली जाती। परिवार में अगर पाँच लोग खानेवाले है तो एक सेर की पिसाद दो सेर उबली पत्तियों में मिलाकर लोग खाते थे। भूखे चारवाहे बटेसरनाथ की डालों पर बैठकर कच्छी दुध्दी फलियाँ चबाया करते। उसमें लासा होने के कारण लोग ज्यादा समय तक उसे खा नहीं सकते थे। बाबा बटेसरनाथ बाढ की कथा को आगे बढाते हुअे कहता है - ''सो उस रात उन लोगों ने मेरी डालों पर से काफी छाल उधेड ली और घर ले आये। दर्द तो मुझे बेहद हुआ, लेकिन खुशी भी कम नहीं हुई कि चलो मैं एक हद तक भूक्खडों के काम आया। अकाल के उन दिनों में धरती तो जल रही थी। लोगों का कलेजा तक सुखकर सोंठ बन गया था।''[67] इसी तरह बाढ के समय बाबा बटेसरनाथ भी अकालग्रस्त लोगों के काम आये इस की खुशी बाबा को बहुत हुअी है। उसे दर्द होने पर भी लोगों को मुसीबत में काम आना अच्छा लगता है।

उस समय भारत पर विक्टोरिया रानी का शासन था। जिले के सभी अफसर, गोरे थे, गाँव का एक आध आदमी कलकत्ता जैसे शहर में चपरासी की नौकरी करता था। कई लोग फौज में भी जाते थे। बस्ती भर में एक जुन का चावल खानेवाले तीनही परिवार थे। आखिर खेतमजदूर गाँव छोडकर चले गये। राजराजेश्वरी महारानी विक्टोरिया प्रजा की दूर्दशा देखकर द्रवित हो गयी । नागार्जुन महारानी विक्टोरिया को बनिया की रानी की संज्ञा देते है। कहते है - ''बनियों की रानी द्रवित हुई तो क्या हुआ ? रानी विक्टोरिया ने रेल लाइन बनवाने का काम शुरु किया। हजारों लोगों को काम मिल गया। कम से कम मजदुरी में जादा काम हो रहा था। यह रेल्वेलाईन बनवाने में जनहित की भावना नहीं थी। बल्कि अंग्रेज व्यापारियों का कच्चामाल आसानी से ढोने के उद्देश्य से बनवाई जा रही थी। अंग्रेजों की कुटनीति का अच्छा उदाहरण यहाँ मिलता है। इस अकाल की चपेट में देश का समूचा पूर्व हिस्सा आ गया था। भूखमरी से हजारों परिवार बरबाद हो गये थे और लाखों की जान चली गयी थी। नागार्जुन भूखमरी की इस हालत को देखकर कहते है - ''प्रिय से प्रिय व्यक्ति दम तोड देता तो लोग रोते नहीं थे। भूख की जलन में आत्मा झंवा गयी थी और आँसू गायब हो चूके थे।''[68] इसी तरह भूखमरी का हृदयविदारक वर्णन नागार्जुन ने अपने उपन्यास में किया है।

लाशों का बुरा हाल था। लोगों में जब तक ताकद थी और काठ सुलभ थे तब तक मूर्दे जलाये जाते कोई उठानेवाला नहीं था। "गीधों, कौओं और कुत्तों का आपसी वैर भाव इसलिए खत्म हो गया था कि लाशों की कमी नहीं थी।"[69] इसी तरह लाशे पडे रहने से भेडिया, कुत्ते, कौअें आकर उसे खाने लगे थे। इसी तरह अकाल की वजह से लोगों की दयनीय अवस्था का चित्रण मिलता है। वास्तव में नागार्जुन ने मिथिला के जनजीवन पर पडी अकाल की छाया का बडा ही हृदयविदारक चित्र प्रस्तुत किया है। एक ओर जमीनदारों और साहूकारों के शिकंजे में जकडा सामान्य जन छटपटा रहा है तो दुसरी ओर दैवी प्रकोंपों ने तो जैसे उसकी कमर ही तोडकर रख दी है।

अकाल की भीषण कथा सुनाने के बाद बाबा ने ब्रह्मबाबा की कथा सुनाई। टुनाई पाठक का दादा जद्दू पाठक था। पाठक के घराने में 300 वर्ष पहले चक्रपाणि पाठक नाम के एक अकबाली पुरुष थे। वे नेपाल के राजा के सेनापति थे। एक लडाई में वे मारे गये। चक्रपाणि पाठक मरकर ब्रह्म हुअे। दो सौ साल वह एक पीपल पर रहे, पच्चीय वर्ष आँवले के वृक्ष पर और पचहत्तर वर्ष तक एक पाकड पर रहे। एक बार जोरों की बाढ आयी तब इलाके के बहौत सारे दरख्त सूख गये। तभी से पाठक बाबा आश्रयहीन हो गये।

जद्दू पाठक अधिकलाल दादा का सगा था। मरते समय जद्दू पाठक ने दादा से कहा कि बरगद की वेदी पर ध्वजा खडा करके ब्रह्मबाबा की स्थापना करो। अधिकलाल भाई ने धूमधाम से ध्वजा गाडकर बरगद के पेड पर ब्रह्मबाबा की स्थापना कर दी तब से बरगद के प्रति जनसाधारण की जो भावना थी वह बदल गयी। लोग खुले दिल से वहाँ नहीं आते थे। किसी के घर कोई शुभ कार्य हो ता तो लोग धूमधाम से मनौतियाँ चढाते। "रेशम की झूलों, कोढिला के बने सिर मौर और मंडप, जरी गोटे की मालाएँ, पीतल-काँसे की धंटियाँ, लाल इकरंगे का टुकडा .... धुप दीप, फूल-फल, अच्छत, दूब, दूध और गंगाजल, बेल और तुलसी के पत्ते .... फर फरहरी में मिठाइयाँ पकवान, पान मखान ... ढोल ... ढाक पिपही ! बारह महीनों में बीस पच्चीस बकरे की बलि चढते थे।"[70]

''नागार्जुन के औपन्यासिक कृतियों में समाज में प्रचलित देवी देवताओं की पुजा का यथार्थ चित्रण किया है। बाबा बटेसरनाथ में उन्होंने समाज में प्रचलित वृक्ष पुजा उसमें निवास करनेवाले देवताओं ब्रह्म आदि में सर्वसाधारण की अंधभक्ति से वटवृक्ष द्वारा परतंत्र का अनुभव कराकर धार्मिक पाखंडों एवं अंधविश्वासों में अपनी अनास्था व्यक्त की है।''[71] लोग इच्छापूर्ति के लिए और स्वार्थपूर्ति के लिए मनौतियाँ माँगते है और इच्छापूर्ति के बाद अंधभक्ति और बलि चढाना इससे जनसाधारण में प्रचलित अंधविश्वास का नग्न रुप पाठकों के सामने आता है। बाबा बटेसरनाथ का कलेजा उन बकरों को देखकर सूख जाता था। क्योंकि वे बकरे उसके गोद में खेले थे। मचलते मूंडे और तडपते धडों की खूनी पिचकारियों से उसका सिना सूर्ख हो जाता था। पहले स्त्रिया आकर बटेसरनाथ की पूजा करती थी। जेठ महिने की अमावस को सुहागिन औरते आकर फेरे डालती थी। अब वह बंद हो गयी थी। जद्दू का बेटा मध्दू की शादी पचपन वर्ष की आयु तक नहीं हुई। उसने ब्रह्मबाबा को पाँच बार बकरे बलि दी थी। फिर भी उसकी शादी नहीं हुई। अत: ब्रह्मबाबा से उसकी श्रद्धा उठ गयी। उसने भूत-प्रेत के बारे में जाननेवाले औधड डोम को बुलाया। औघड बाबा में कंकाली माई का नाम लेकर ब्रह्मबाबा की ध्वजा उखाडकर गिरा दी। और लोहे के कील में ब्रह्मबाबा को कैद किया और वह कील रुपडली से उत्तर एक पुराने पीपल के सिने में ठोक दिया। इस तरह बटेसरनाथ की उस ब्रह्मराक्षस से छुटका हो गयी। दुसरे वर्ष ही मध्दू की शादी लंगडी लडकी से हो गयी। दो-तीन महिने बाद लोग धीरे-धीरे बटेसरनाथ के पास आने लगे। भारत का ग्रामीण निम्न वर्ग किस तरह रुढी प्रथाओं और अंधविश्वासों से ग्रस्त है और इन्हीं कारणों से वह शोषण का शिकार हो रहा है इसका यथार्थ चित्रण मिलता है।

गाँव में प्राकृतिक आपदा फिर एक बार आ गयी थी। गाँव में भयानक बाढ़ आयी थी। ''नागार्जुन के अधिकांश उपन्यासों का कथ्य बिहार के जनजीवन से लिया गया है। अत: यह सहज ही है कि वहाँ आर्थिक चित्रण में बाढ़ एवं अकाल की विभीषिका एवं तज्जन्य परिणामों के चित्रण के पर्याप्त स्थल सहज ही आ गये है।''[72] बाढ की वजह से समुचा इलाका पंद्रह दिनो तक डुबा रहा। बाढ से फसले डूब गयी। मैदान समुद्र बन गये। आसपास के इलाकों में बहुत सारी बस्तियाँ कमरतक पानी में आ गयी।

रुपडली काफी ऊँचाई पे होने के कारण यह गाँव टापू जैसा लगता था। रजबाँध पानी के अंदर था। बटेसरनाथ के चारो ओर घुटनाभर पानी था। चमारों के घरों के अंदर पानी घुस गया तब वे पोखर के मुहारपर आ गये। मुसहडों की बस्ती कमरभर पानी के अंदर थी। तब लोग बटेसरनाथ की डालों पर मचान बाँधकर रहने लगे। बाढ के उन दिनों में रुपडली गाँव के चार आदमी साँप के काटने से मर गये। मजदुरी की खोज में पुरुष शहर छोडके चले गये। बाद में बच्चों को लेकर स्त्रिया चल पडी। दूसरों के खेतों में मजदुरी करके जीविका चला रहे थे। ''दुसरों के खेतो में मजदुरी करके जीविका चलाने वालों का तो और भी बुरा हाल था। यह बाढ उनके लिए भूखमरी का बिगुल बजाती आयी थी। रास्ते बंद थे, भागना भी आसान नहीं था।''[73]

मामूली किसान चावल तो क्या जलावन के अभाव में खेसाडी और मसूर के दाने भिगाकर चबाया करते थे। कुओं का पानी पीने लायक नहीं रह गया था। लोग पटापट बीमार पडते थे। दवा-दारु कोई इन्तजाम नहीं था। जैकिसुन की दादी उसी बाढ में बीमार पडी थी और इसी में ही उसकी मृत्यु हो गयी। इसी समय सरकार की ओर से लहेरियासराय में एक अस्पताल खुलवाया था। परंतु लोगों में अफवाह थी कि ये अस्पताल हिंदुओं को भ्रष्ट करने के लिए शुरु किया है। अत: लोग वहाँ नहीं जाते थे। ''सभी एकमत थे कि शहरों के अंदर जो अस्पताल खुल रहे है वे हिंदुओं को भ्रष्ट करने के खिस्टानी कारखाने है --- गोमांस का अर्क, सूअर का लहू, विष्ठा का सत आदमी की खोपडी का गूदा - विलायत से दवाएँ तैयार होकर आती है ---- जोरों की अफवाहें फैली हुई थी डॉक्टरी दवाओं के खिलाफ!''[74]

जैकिसुन का दादा अधिकलाल राउत के जमाने में रुपडली के कोसभर दूर पूरब में एक गोरा साहब आकर बस गया। महाराज बहादूर से दौ सौ एकड जमीन सो-साल के पट्टे पर नील की खेती के लिए उसको मिली थी। टुमका की तरफ से मूसठडों के पचास परिवार वह ले आया था। उन्हीं लोगों से वह खेती करता था। वह उनकी मेहनत का और जान का पूरा मालीक था। उन दिनों गोरों का आतंक था। पचास वर्षों तक यह गोरा साहब पासपडोस की जनता के स्वाभिमान को रौंदता रहा। उसने रुपडली के किसानों पर तिनकठियाँ लागू कर दिया था। तिनकठियाँ याने प्रति बिघा तीन कठ्ठा जमीन

में नील की खेती करने के लिए किसानों को मजबूर करना जैकिसुन के दादा को जैन साहब ने इसलिए पीटा था, कि वह एक बार सलाम करने भूल गया था।बाबा बटेसरनाथ अंग्रेजों के शोषण के बारे में कहते है - ''उन दिनों गोरों का आम लोगों पर भारी आतंक था। शहर हो चाहे देहात, व्यापार-वाणिज्य का क्षेत्र हो चाहे किसान-जमीनदारी का, जज कलक्टर होता हो या सेक्रेटेरियट - सब जगह गोरी चमडी वालों की तूती बोलती थी।''[75] उसी तरह अंग्रेजों के अत्याचार के शिकार सभी लोग हो रहे थे।

नागार्जुन ने इस उपन्यास में शिक्षा व्यवस्था का भी वर्णन किया है। जैनारायन के चाचा ने रुपडली में प्रथम बार अंग्रेजी पढी थी। टुनाइ पाठक का भाई जगमोहन इन्ट्रेन्स की परिक्षा पास कर तहसीलदार बना था। जानू राउत की यह इच्छा थी कि अपना बेटा कुछ पढ लिखा जाय ; वह जिंदा रहत तो जैकिसुन मैट्रिक पास कर लेता। जानू राउत पढा लिखा नहीं था, लेकिन उसने दुनिया देखी थी। बाबूसाहब देवीदत्त सिंह ने चारो धाम की यात्रा की थी। तब जानू उनके साथ में था। उस समय जानू को इनाम में मनभर चावल, धोती, चादर और एक गाय मिली थी। सन 1930-32 के आंदोलन में जानू राउत दो महिने जेल में था। जानू की साँप के काटने से मृत्यू हो गयी। नहीं तो और पच्चीस-तीस वर्ष वह जीवित रहता। जानू, दया और वीरभद्र तीनों एकही उम्र के थे। दयानाथ शत्रुमर्दन राय का पोता था। वीरभद्र-बलभद्र का पोता था। दयानाथ को पढने लिखने का मौका नहीं मिला। इस पर बाबा बटेसरनाथ कहते है - ''अब पाठशालाओं और स्कूलों के दरवाजे सभी जातियों के बच्चों कि लए खुल गये है मगर उँची जातवाले का आपसी पक्षपात और 'शुभ-लाभ' के लिए उनकी आपाधापी जब तक मौजूद रहेंगे तब तक मानव समाज की सामूहिक प्रगति नहीं होगी।''[76] अर्थात शिक्षा के कारण व्यक्ति का विकास होता है तो जाति के नाम पर शोषण। विकास के लिए जाति नहीं शिक्षा आदि व्यर्थ है। ग्रामजीवन का आधार शिक्षा इस पर उपन्यासकार ने बाबा बटेसरनाथ के माध्यम से प्रकाश डाला है।

वीरभद्र कलकत्ता युनिवर्सिटी का ग्रॅज्युएट था। उसे बंगाल की हवा लग गयी थी। बंगाल के नौजवान महात्मा गांधी की असहयोग और सत्य, अहिंसा की बातों में आस्था नहीं रखते थे। ईस्ट इंडिया कंपनी के जमाने से ही गोरी हुकूमत के खिलाफ बंगालियों का सशस्त्र प्रतिरोध शुरु हो गया

था। वीरभद्र इन क्रांतिकारियों में से एक था। उसने एक बार तीन साल की और दूसरी बार दो साल की कैद काटी थी। तीसरी दफा वह रुपडली में ही सोलह महिने नजर बंद रहा। दयानाथ पढा लिखा नहीं था लेकिन महात्मा गांधी के लिए उसके मन में अपार श्रद्धा और भक्ति थी। 1926 में नागपुर में हुये झंडा सत्याग्रह में उसने भाग लिया और उस समय वह बाइस दिन नागपुर में था। उस समय देशभर असहयोग की धुम मची हुई थी। लोग सरकारी नौकरी, मास्टरी या प्रोफेसरी से इस्तिफा दे रहे थे। सतगामा के लीडर और पार्लियामेंट के मेंबर कुलानंददास सन 1922 में वकालत छोडकर गाँधीजी के दल में शामिल हो गये थे।

बीसवी शताब्दी के तृतीय और चतुर्थ दशक विभिन्न राजनीतिक आंदोलनों का दशक है। भारतीय जनआंदोलन का विराट प्रदर्शन पहली बार 1921 में प्रिन्स ऑफ वेल्स की भारतयात्रा के अवसरपर हुआ। नागार्जुन के हिंदी साहित्य में स्वाधिनता आंदोलन और ग्रामजीवन का चित्रण आया है। अंग्रेज शासन के प्रति भारतीयों के अंदर जो विक्षोभ था उसका विस्फोट इतने जोरों में हुआ कि विलायती तानाशाह बुरी तरह घबरा उठे। जल्द-से-जल्द स्वराज्य प्राप्त करने के लिए काँग्रेस ने 1920 में असहयोग और बहिष्कार कार्यक्रम अपनाया था। जनता में उत्साह की अनोखी लहर फैल गयी। गाँधीजी ने भविष्यवाणी कर दी कि वर्षभर में स्वराज्य मिल जायेग। गांधीजी को छोडकर स्वराजी काँग्रेस के डिक्टेटर थे। उसी समय 'चौरी चौरा कांड' हो गया। गाँधीजी बडे दु:खी हुअे और उन्होंने सत्याग्रह की लडाई को स्थगित कर दिया।

1930 में काँग्रेस ने फिर आंदोलन शुरु किया। जनविरोधी कानूनों से उबे हुए लाखो लोग आंदोलन में शामील हुअे। गाँधीजी ने कहा कि अहिंसा में बट्टा न लगे तो मुझे हार भी कबुल होगी। गाँधीजी अपने आश्रमवासी चेलों के साथ नमक कानून तोडने निकले। गाँधीजी ने जन आंदोलन की जो सीमाएँ बांध रखी थी वह टूटने लगी। चटगाँव के शस्त्रगार पर छापा मारा गया। उत्तर प्रदेश में जोरो से लगान बंदी शुरु हुई। पेशावर में गढवाली सिपाहियों ने निहत्थी भीडों पर गोली चलाने से इन्कार किया। और गांधीजी के गिरफ्तारी के बाद हडतालों की मानों बाढ आ गयी। अंग्रेजी हुकुमत के बारे में

बाबा बटेसरनाथ कह रहे थे कि - ''साम्राज्यशाही दमन की कोई सीमा नहीं थी। ऑर्डिनेन्स पर ऑर्डिनेन्स निकल रहा था। काँग्रेस और उसके संबंधित संगठन गैर कानूनी करार दिये गये। दस महिने के अंदर नब्बे हजार मरदों औरतो और बच्चों को कैद की सजा दी गई। जेल ठसाठस भर चुकी थी। वेतो हंटरों, लाठियों और गोलियों का सिलसिला चला लेकिन जनता की हिम्मत नहीं हुई।''[77] इसी तरह अंग्रेज सरकार के हुकु मत का चित्रण मिलता है।

रुपडली गाँव में दयानाथ ने नमक कानून तोडने का यज्ञ किया। उसे जानू राउत ने सहायता की थी। तो दारोगा ने दोनों को गिरफ्तार किया। इसी समय वीरभद्र पिछले सोलह महिनों से गाँव में नजर बंद था। सत्याग्रह और पिकेटिंग से उसका कोई संबंध नहीं था। पुलिस सुपरिटेंडेंट एक दर्जन मिलिटरी के साथ आया और वीरभद्र को गिरफ्तार किया।

1931 में विलायत में गोलमेज कान्फ्रेन्स हो गयी। गाँधी, जीना, आंबेडकर जैसे पचासों प्रतिनिधि उसमें शामील हुए। वह कान्फ्रेन्स क्या थी? शिवजी की बारात थी? वहाँ भी समझौते के रुप में कुछ भी नहीं हुआ। गांधीजी ने सत्याग्रह बंद करके अपनी असफलता कबुल कर ली। बाबा बटेसरनाथ इसके बावजूद भी गाँधीजी के बारे में कहते है - ''महात्माजी के जीवन की सबसे बडी खुबी थी कि आजादी के लिए जो समझदारी पहले थोडे से पढ़े लिखे लोगों तक सीमित थी। उसे गाँधीजी आम पब्लिक तक ले आये।''[78]

मन्मनाथ गुप्त के नुसार - ''गांधीजी ही वे भगीरथ है जो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को मध्य वित्त तथा उच्च श्रेणी के स्वर्ग से उतारकर जनता के बीच ले आये महात्माजी बहुत ही पक्के राजनीतिज्ञ थे उनकी राजनीतिज्ञता में यदि कोई खामी थी तो यह थी कि उनके कुछ खास खयाल थे, वे खयाल थे सत्य और अहिंसा।''[79]

बाबा बटेसरनाथ ने 1942 तक की कहानी सुनाई और वे बरगद के पेड में अदृश्य हो गये। जैकिसुन की नींद टूटी जीवनाथ और सरजगु अभी तक सोये थे। जैकिसुन ने जीवनाथ को जगाया और बाबा की सुनाई हुई कहानी बताई।

लोगों की मानसिक प्रतिक्रिया जानने के लिए टुनाई पाठक और जैनारायण द्वारा बटेसरनाथ को कटवाने की अफवाहे फैली जाती थी। इन दोनों का जैकिसुन को भरोसा नहीं था। अतः वह हमेशा चौकस रहता था। इसी समय राजा बहादूर कृष्ण दत्त सिंह के घर चोरी हो गयी। चार लांशों, सात घायल और अपनी दो बंदुके छोडकर डाकू अपने साथ में पौने दो लाख रुपये का माल लेकर चले गये। इन डकैत में पाठक जैनारायन और दारोगा जीवनाथ और जयनारायन को फँसाना चाहते थे, परंतु उसमें वे सफल नहीं हो पाये। टुनाई पाठक ने निलांबर के सुझाव के नुसार बरगदवाली जमीन दखल कर ली। इस जमीन के संबंध में थानेदार और नीलांबर जीवनाथ को दो बीघा जमीन देकर गाँववालों से अलग करना चाहते थे। लेकिन उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली। ''छोटी जात के गरीब लोगों में जीवनाथ के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव थे, परंतु टुनाई पाठक का उनपर भारी आतंक था। इसके अलावा अकाल के दिनों में पाठक उन्हें अनाज देता था।''[80] इसी तरह जैनारायण के प्रति गाँव में लोगों की श्रद्धा थी। लेकिन टुनाई पाठक जैसे लोगों का आतंक भी लोगों पर था।

टुनाई पाठक गाँव के किसी को डेढ सौ रुपये देकर गाँव के चमार की हत्या करवा देता है। जमीनदारों की शोषण नीति यहाँ स्पष्ट होती है। वे अपने फायदे के लिए साम, दाम, दंड का प्रयोग करते रहे है इसका टुनाई पाठक के माध्यम से दर्शन होते है। हत्या एक करता है परंतु गिरफ्तारी सामान्य निरपराध लोगों की होती है। इसका चित्रण यहाँ यथार्थ रुप में हुआ है। हत्या के इस मामले में जीवनाथ, जैकिसुन, सरजगु, लछमसिंह और सुतरी झा गिरफ्तार हो जाते है। इस सिलसिले में दयानाथ काँग्रेसी एम.एल.ए. बाबू उग्रमोहनदासजी को मिलने जाते है। दयानाथ उनसे खुद रुपडली जाकर मामले की तहकीकात करने को कहते है। बेदखली रुकवाने के लिए दयानाथ स्वयं मंत्रीजी से आश्वासन पाना चाहता था। परंतु उग्रमोहन तैयार नहीं हुओ। उन्होंने मिनिस्टर के बदले कलेक्टर को मिलने की तैयारी दिखाई और दयानाथ को आराम करने की सलाह देकर स्वयं किसी कार्यक्रम में भाषण देने जाते है। इस पर नागार्जुन कहते है - ''राजनीति गरीबों और मूर्खों के लिए नहीं हुआ करती, वह तो बस खाते पीते सयानों की चौपड है।''[81]

इसी तरह दयानाथ सोचने लगा कि थानेदार और जिला के अधिकारी इसी तरह चरते रहे तो भारतमाता की इज्जत आबरु लुट जायेगी। उसका पक्का विश्वास हो गया कि आजादी सिर्फ काँग्रेस की टिकट पर चुने गये लोगों को मिली है। 15 अगस्त 1947 के बाद स्वदेशी शासकों के रंग ढंग देखकर उसे राजनीति से घृणा उत्पन्न हो गयी। वहाँ से दयानाथ किसान सभा के लिडरों से मिलने चला गया।

बरगदवाली जमीन के झंझट में पडने के कारण टुनाई पाठक भयभीत था। चमार की हत्या के कारण पाँचों जवान जेल में थे। जमानत के लिए लोगों की दौड धूप जारी थी। बेदखली के खिलाफ आंदोलन हो रहा था। आंदोलन करनेववाले संगठित हो रहे थे। लोगों में एकता एवं चेतना बढ़ रही थी। गाँव के उत्तेजित लोगों को दयानाथ ने शांत किया। दयानाथ लहेरियासराय जाकर युवक वकील श्यामसुंदर से मिले। वे नौजवान संघ जिला कमेटी के दरभंगा के प्रेसिडेंट थे। उन्होंने दयानाथ को गाँव में नौजवानों को संगठित करने की सलाह दी। जो लोग बंद थे उनमें से दो के लिए उन्होंने जमानत का इंतजाम किया। तीसरे ही दिन पाँचों जवानों की रिहाई हो गयी। इसी बीच जैनारायण को दो युवको ने पिटा और उनपर एक मुकदमा भी दायर कर दिया गया। सब समझ गये कि अदालत के भरोसे रहकर दुष्टों का मुकाबला नहीं कर सकते। उसके लिए जनबल को संगठित करने की आवश्यकता भी है। रुपडली में प्रथम रेहुआ थाना 'किसान सम्मेलन' आयोजित करने का निश्चय किया। टुनाई पाठक का गाँव में रहना असंभव हो गया। क्योंकि पाँचो युवकों ने जेल से छूटने के बाद जोश से काम शुरु किया। किसान सभा और ग्राम कमेटियों की स्थापना करके मिटींग होने लगी। किसान सभा, नौजवान संघ की स्थापना होना ग्रामचेतना का प्रभाव है। इससे लगता है अन्याय के खिलाफ अपने हक की प्राप्ति के लिए ग्रामवासी संगठित हो रहे है, जिससे नई समाज व्यवस्था का निर्माण होगा, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा। रुपडली गांव इसका प्रमाण है। जीवनाथ ने 'नवराष्ट्र' और 'जनशक्ती' ये बाते छपवाने के लिए भेज दी। ये बाते पढकर लोग काफी खुश हो गये। इसी तरह अखबार के माध्यम से समूचे बिहार को वाणी मिल गयी। श्यामसुंदरबाबू डटकर पैरवी कर रहे थे। चमारों की हत्या का भांडा फोड दो चमारो ने अदालत में जाकर किया। अत: मुकादमा डिसमिस होकर टुनाई पाठक और जैनारायण के नाम वारंट निकल गये। दयानाथ और हाजीकरीम बक्स लघुसिंचाई योजना के अधिकारियों से दरभंगा जाकर दो

बार मिल आये थे। लेकिन सिर्फ आश्वासन ही मिल रहे थे। लोकसभा और विधानसभा के काँग्रेसी प्रतिनिधियों ने रुपडली को कम्युनिस्ट प्रभाव गाँव घोषित किया।

जैकिसुन को दुसरी बार बरगद बाबा ने सपने में दर्शन दिया। रुपडली की तरक्की देखकर बाबा प्रसन्न था। बाबा ने पंद्रह दिनों में होनेवाली अपनी मृत्यु की सूचना देकर सुझाव दिया कि उसकी सुखी लकडियों से इंटे पका लेना और उन इंटों में ग्राम कमेटी का मकान तैयार करना। मृत्यु के बाद उसके जगह पर उसके ही बीज का एक बिरवा लगाने को भी बाबा कहता है। बरगद बाबा सुखने के बाद लोगों ने वहाँ बरगद का नया पौधा लगाया। उसके पास ही श्वेत पताका गाडकर उस पर लिखा था - ''स्वाधिनता ! शांति ! प्रगति!!''

ललित अरोडा के मतानुसार - ''वटवृक्ष के माध्यम से दोहराया गया चार पीढियों का इतिहास केवल इतिहास ही नहीं वरन् सामाजिक शिलालेख है।''[82]

डॉ. बदरीप्रसाद के शब्दों में नागार्जुन का बाबा बटेसरनाथ स्वाधिनता आंदोलन का दस्तावेज है। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण जीवन का आइना है। लेखक ने इस उपन्यास में मिथिला के जीवन को समाजवादी दृष्टि से अंकित किया है। मिथिला की आर्थिक विषमता, पीडा, आभाव, संघर्ष, राजनीतिक दाँवपेच, काँग्रेसी नेताओं की तिकडमबाजी, पूलिस वर्ग की मनमानी, सरकारी अधिकारियों का भ्रष्टाचार आदि बातों को यथार्थवादी दृष्टि से रेखांकित किया है। बदरी प्रसाद के अनुसार - ''कुल मिलकर यह उपन्यास भारतीय जनजीवन की प्रगतिशीलता और राष्ट्रीय जीवन के उत्थान की प्रेरणा से संबलित है।''[83]

नागार्जुन ग्रामीण जीवन के अच्छे जानकर है। उन्होंने इस उपन्यास में ग्रामजीवन की आर्थिक स्थिति तथा आर्थिक दृष्टि से विपन्न भारतीय समाज के चित्र प्रस्तुत किये है। उपजीविका का साधन खेती और मजदुरी होती है। आर्थिक कारोबार खेतीपर निर्भर रहता है। मिथिला जनपद पिछडा हुआ क्षेत्र है। नागार्जुन ने मिथिला में आर्थिक विषमता का चित्रण करते समय समाज में व्याप्त कर्ज पद्धति का मार्मिक उद्घाटन किया है।

नागार्जुन ने सामाजिक विषमता का वर्णन यथार्थ किया है। समाज में अनेक सामाजिक बुराइयाँ मौजुद रहती है। लोग अंधविश्वासों के कारण रुढीप्रिय हो गये है। धार्मिक अंधविश्वास के कारण पंडित पुरोहित लोगों के अज्ञान का लाभ उठाते है। सामान्य जनता का विश्वास, उनके प्रगति के लिए बाधक सिद्ध हो चुका है। इसका चित्रण किया है। बाबुराम गुप्त के नुसार - ''नागार्जुन ने अपने उपन्यासों के कथ्य को बिहार जनपद में धर्म के क्षेत्र में प्रचलित एवं व्याप्त अनेक बाह्यडंबरो एवं रुढियों से ग्रस्त दिखाकर न केवल सहज एवं विश्वासनीय ही बनाया वरन इस सामाजिक शापन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जनमानस को उदबुद्ध करने का सफल प्रयास किया है।''[84] यह कथन यथार्थ लगता है।

नागार्जुन ने शिक्षा संबंधी विचार भी प्रस्तुत उपन्यास में व्यक्त किए है और युवापिढी का चित्रण भी किया है। रुपडली में एक दो आदमी अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर चुके है। रुपडली में सबसे पहले जैनारायण के चाचा ने अंग्रेजी पढ़ी थी। लेकिन बाद में देहातों में शिक्षा का प्रचार प्रसार बढता गया। आजादी के अवसरपर बहौत आदमी अंग्रेजी पढ़ लिख गये थे। नीची जाति के लोग भी पढने लिखने लगे थे। युवा पिढी में भारत के नये समाज के निर्माण का दायित्व निभाने का सुनहरा सपना, नागार्जुन देखते है। इस उपन्यास में रुपडली के स्वतंत्रता आंदोलन में हजारो लाखो नौजवानों ने प्राणों की बाजी लगाई है। नौजवान देश के विकास के लिए अपने संघर्ष को कायम रखने की प्रेरणा देते है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी नीति, दमन एवं अमानुष व्यवहार का चित्रण किया है। ब्रिटिश साम्राज्यशाही जनसाधारणपर अपनी पकड को मजबूत रखने के लिए वैधानिक और अवैधानिक दोनो प्रकार के हथकंडों का प्रयोग करती थी। इसका चित्रण आया है। नागार्जुन का बाबा बटेसरनाथ केवल एकमात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शोषण नीतियों व उनके द्वारा ढाये जुल्मों का चित्रण हुआ है।

इसी तरह नागार्जुन ने अपने उपन्यास में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक चित्रण किया है। ग्राम जीवन से संबंधित किसान आंदोलन जमीनदारी प्रथा, अंधविश्वास, रुढी परंपरा, अशिक्षा, प्राकृतिक आपदा आदि का वर्णन यथार्थ रुप से किया है।

नागार्जुन के इस उपन्यास के कथावस्तु में प्रसंगों का विन्यास, कथाअंशों का संयोजन अच्छी तरह से हुआ है। प्रासंगिक कथाएँ मुलकथा में प्रवाह के रुप में आयी है। जिससे कथावस्तु प्रभावशाली हुई है। पात्र लोक संस्कृति तथा परिवेश को सजीव करने की दृष्टि से उठाये गये है। कथावस्तु के अनुकूल और ग्रामआंचल का समग्र चित्रण करने की दृष्टि से पात्र आये है। कथोपकथन निवेदनद्‌वारा ही आये है। 'बाबा बटेसरनाथ' में भाषा का सहजता से प्रयोग हुआ है। सरल स्वाभाविक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। भाषा में रोचकता, पात्रानुकूलता, विषयानुकूलता आयी है।

नागार्जुन के 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास का उद्देश्य क्रांति का उदय, व्यष्टिचेतना, समाष्टि चेतना, वर्तमान समस्याओं से छुटकारा पाना हो सकता है। सामुहिक एकता में चेतना लाना भी रहा है।

नागार्जुन के उपन्यास में आँचलिकता के साथ लोककथा, लोकगीत, त्यौंहार, उत्सवों का वर्णन भी आया है। लोककहानी में दुसाधों के वीर पुरुष महाराज सल्हेस तथा उसकी प्रियेसी कुसुम दोनों का उल्लेख मिलता है। इस प्रेमकथा को लेकर मिथिला आंचल में जो लोकगित प्रचलित है उसकी मिठास पठनिय है।

''उमर बीत गई
बाल पकने लगे
पिछले बारह वर्षों से
इस आंचल में गाँठ बाँध रखी है मैने
आने का लेता है तो भी नहीं नाम
निठुर मेरा दुसाध ----
राजा सलहेस प्रीतम मेरे !''[85]

'बाबा बटेसरनाथ' में रुपडली, दरभंगा, केडटी, सीतामढी, नेपाल के मोरड इलाका, मुंगेर, जमालपुर, इलाहाबाद, सतगमा, दरभंगा, मकरमपुर, मोगलसराय, गोरखपुर, आदि नगर और ग्रामों का उल्लेख आया है।

निष्कर्ष :-

नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ' अपने ढंग का अनोखा उपन्यास है। शिल्पपक्ष की दृष्टि से उसमें अभिनव प्रयोग है। समूचे उपन्यास पर लेखक का राजकीय जीवन दृष्टिकोण छाया हुआ है। पीडित कृषक मजदुरों के दु:खों का अंत करने के लिए लेखक जिस समाजवादी समाजरचना की स्थापना करना चाहता है, उसकी स्थापना करने में वे पूर्णत: सफल हो चुके है। ग्रामआंचल में स्थित अंधविश्वास, उत्सव, पर्व, परंपरा, प्रथा, शोषण, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक स्थिति, समाजव्यवस्था, जातिभेद का यथार्थ वर्णन किया है। अत: 'बाबा बटेसरनाथ' ग्रामजीवन की कहानी है ऐसा लगता है। 'बाबा बटेसरनाथ' हिंदु जीवन, धार्मिकता, अध्यात्मिकता का प्रतिक नहीं बल्कि लोककला, सांस्कृतिक जीवन का आश्रय स्थान है। इसमें भारतीय ग्रामजीवन और संस्कृति का मनोहारी चित्रण हुआ है।

गांधी आंदोलन, काँग्रेस आंदोलन, संगठन, चले जाव, नमक कानून के खिलाफ आंदोलन प्रासंगिक लगता हैं। स्वतंत्रता आंदोलन से प्रभावित मिथिलांचल है। गांधी का तत्वज्ञान जीवन दर्शन इसमें स्थापन हुआ है ऐसा लगता है। बीते युगों की सडांघ का समर्थन किसी भी किंमत पर न करनेवाला बाबा है। गांधी के प्रति आस्था रखनेवाले नागार्जुन के अहिंसा नीति की आलोचना की है। आजादी के लिए क्रांति को नहीं नकारते पात्रों के मुँह से मार्क्स के साथ लेनिन का भी नाम आता है।

प्रस्तुत रचना में बाबा बटेसरनाथ सिर्फ वृक्ष नहीं बल्कि ग्रामजीवन का प्रतीक लगता है। जिसकी जडे गाँव की मिट्टी में गहरी फैली हुओ लगती है। 'बहुजन हितांय, बहुजन सुखाय' लोकानुकंपाय का संदेश देनेवाला बाबा रहा है। जीने के लिए जीना नहीं, परोपकार के लिए जीना जीना है यही उनकी धारणा रही है। उनका जीवन तरुणाई के लिए प्रेरणादायी है। उपन्यास का अंत स्वाधिनता! शांती!, प्रगति! के नारे के साथ होना भी प्रतीकात्मक रहा है। अत: यह उपन्यास अनेक अर्थों में प्रतीकात्मक एवं यथार्थ लगता है। ग्रामजीवन का बहुआयामी चित्रण करनेवाला रहा है।

दुखमोचन

नागार्जुन का 'दुखमोचन' यह आँचलिक उपन्यास टमकाकोइली गाँव की कहानी है। इसमें लेखक ने स्वाधीन देश की नवोत्थान चेतना के अनेक पक्षों को सीमित परिधि में चित्रित्र किया है। सहकारीता, विधवा-विवाह अन्तर्जातीय विवाह, सीमा प्रदेश का तस्करी व्यापार, गोवध प्रायश्चित और मिट्टी के शालीग्राम का पुजन आदि के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक परिस्थितियों को उजागर किया है। नयी पीढी को विश्वास और उत्साह की अभिव्यक्ति प्रदान की है।

'दुखमोचन' नागार्जुन की समाजवादी कृति है। इसमें जनसेवापरायण एक व्यक्ति दुखमोचन की कथा है। दुखमोचन गाँव की समस्या को सुलझाने वाला युवक जनसेवा के लिए कटिबद्ध और ग्रामसुधार और ग्रामविकास का सफल प्रयत्न करने वाला उपन्यास का नायक है। उसकी प्रगतिशील महत्वकांक्षी विचार धाराएँ नवचेतना को स्वर प्रदान करती है। नये पुराने के संघर्ष में नवीनता का साथ देना नागार्जुन का के उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य है। इस श्रेणी के उपन्यासों में नागार्जुन का 'दुखमोचन' महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिसमें नव्य एवं पुरातन का संघर्ष नितांत स्वाभाविक धरातल पर चित्रित हुआ है। नागार्जुन के विचारों का वाहक दुखमोचन है। उनका कार्य नागार्जुन की विचारधारा है।

टमकाकोइली पाँच हजार से उपर आबादीवाला गाँव है। गाँव खेती और बागों से हराभरा है। उत्तर और पुरब की तरफ से नदी बहती है। गाँव में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की पक्की सडक और मीटरगेज की रेल्वेलाइन है। गाँव में रामसागर की बूढी माँ का देहांत हो गया था। मधुकान्त दुखमोचन को यह बात बताने आया था। दुखमोचन बाढ-पीडितों की सहायता के लिए लगातार बाहर ही घुमता रहता था। दुखमोचन के भाई सुखदेव शालीग्राम पुजा का बहाना बना के खुद वहाँ जाने के लिए टाल देते है। वह कहते है - "मद्धू बबुअन ठीक कहते है ---- और ---- और मै रामसागर की माँ के शव को कन्धे जरुर लगाता किन्तु फिर तीन दिन हमारे शालिग्राम बिना पुजे ही पडे रहेंगे, शंख में पानी भरकर कौन उन्हें नहलाएगा और कौन करेगा सहस्त्रशीर्षा मंत्र पाठ का पाठ समझते हो न मधुकांत ?"86 दुखमोचन आखीर वेणीमाधव को लेकर वहाँ गया। लेकिन लगातार वर्षा के कारण रामसागर की माँ का

अंतिम संस्कार करना एक कठिन कार्य बन गया। अर्थात प्राकृतिक आपदा (बरसात) के कारण आम जीवन में अनेक समस्याएँ पैदा होती है। इसके यहाँ दर्शन होते है। उपन्यासकार ने बरसात के कारण उत्पन्न समस्या का चित्रण करते हुए लिखा है। "बरसात के मौसम में गरीब गृहस्थों के यहाँ सूखी लकडिया पाना बडा ही कठिन है। लगातार कई दिन कई रात तक जब बारीश होती रही हो तो उस कठिनाई का न ओर मिलेगा न छोर!"[87] इसीतरह बारीश की वजह से गरीबों की लकडिया गिली होती थी और जलने की समस्या उत्पन्न होती थी। बरसात के मौसम में गरीब गृहस्थों के यहाँ सूखी लकडिया मिलना बडा कठीन था। गाँव में सुखी लकडिया देने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। दुखमोचन ने अपने घर के तख्ते निकालकर लकडियाँ जमा की। रामसागर की माँ की लाश दुखमोचन ने गाँव के लोगों की राय से एक एकड श्मशान के लिए जगह रखी थी वहाँ दाह संस्कार किया। इसी तरह दुखमोचन गाँव के गरीब लोगों के लिए मदद करने के लिए पिछे नहीं रहता था। भावुक, त्यागी, सेवावृत्ति का परिचायक दुखमोचन है। अर्थात नाम की सार्थकता उसमें दिखाई देती है।

दुखमोचन की विधवा मामी थी। दुखमोचन के दो भाई थे, सुखदेव औ नारायण। नारायण हजारी बाग में महकमा जंगल का मुलाजिम था। दुखमोचन की पत्नी हैजा की शिकारी हो गयी थी। दुखमोचन को दो लडकियाँ थी यही उनका परिवार रहा है। अर्थात दुखमोचन का पारिवारिक चित्रण दुखद ही लगता है।

ग्रामों का जीवन समस्याओं की गाथा ही रहती है। एक साथ अनेक समस्याएँ रहती है। जिसमें ग्रामजीवन के विकास मे रोडे खडे होते है। समाजवादी उपन्यासकार नागार्जुन ने अपनी रचनाओं में ऐसी समस्याओं पर प्रकाश डाला है। प्रस्तुत टमकाकोईली गाव इसी बात का प्रमाण है।

गाँव बाढ और बीमारी की समस्या से पीडित था। गाँव के लोग इस समस्या से परेशान थे। बाढ की वजह से आधी फसले बरबाद हो गयी थी। अधिकांश खेत मजदूर रोजी रोटी की तलाश में अपना-अपना इलाका छोडकर पूरब-पश्चिम जानेवाली रेलगाडीयों पर सवार हो चुके थे। गाँव में बाढ आने की वजह से पानी जहरीला बना था। और इसी कारण सभी का खुन खराब हो गया था। मलेरिया

और कालाजर जैसी बिमारीयाँ फैलने लगी। आसीन में एक नये किस्म की खुजली फैली थी। दाद की तरह समूचे बदन में छा जाती थी। गोरी सुरत को साँवली और साँवली को काली कर देती थी। यह एक विचित्र प्रकार का चर्मरोग था। बदन में खुजलाहट करने के बाद चकत्ते निकल आते थे। चार छ: रोज बाद यहाँ वहाँ चकता ही चकता और वह चकते कुरुप बना देते थे। गाँव में लोग इसी वजह से परेशान थे। गाँव में लोगों को इस समस्या का सामना करना पड रहा था। उमा गगरानी के शब्दों में - ''सूखा बाढ अकाल आदि प्राकृतिक प्रकोंपों का शिकार भी अंतत: निम्नवर्ग ही होता है। देश का बिहार प्रांत इन प्राकृतिक प्रकोपों से कई शताब्दियों से जूझता चला आ रहा है। चूंकि नागार्जुन और रेणु के उपन्यासों का कथ्य बिहार का जनजीवन ही है। इसीलिए सहज की उनके उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है।''[88] इसी तरह गाँव के लोगों को नैसर्गिक आपत्तियों को सामना करना पडता है।

सुखदेव और उसकी पत्नी भी चर्मरोग से पीडित थे। दुखमोचन ने बार-बार होमियोपैथी और आयुर्वेद की किताबों में इस बीमारी के बारे में देखा मगर कुछ समझने नहीं आया। दुखमोचन ने दरभंगा जाकर सरकारी मेडिकल कॉलेज के एक चर्मरोग विशेषज्ञ डॉक्टर से दोनों के खुन की जाँच की। डॉक्टर ने गंधक का अधिक इस्तेमाल करना और नीम के साबुन से घाव को अच्छी तरह से धोने के लिए कहा। लेकिन आस-पास के गाँवों के सत्तर प्रतिशत लोग इसके शिकार थे - ''मगर यह दो-चार का रोग तो था नहीं आस-पास के गाँवों के सत्तर प्रतिशत लोग इसके शिकार थे। जहाँ तहाँ मवेशियाँ पर भी उसका असर देखा गया।''[89]

दुखमोचन इसी इलाके के पाँच-सात नेताओं और अफसरों से इस सिल सिले में बार-बार साहायता की प्रार्थना की, जिल्हाधिकारीयों तक जनता की आवाज पहुँचाई। दुखमोचन के प्रयत्न को यश मिला। गंधक के दर्जनो पैकेट और नारियल के तेल से भरे बीसियों डिब्बे ग्रामपंचायत के दफ्तर में पहुँच गये। लेकिन चौधरी लोग स्वार्थी थे। उन्हीं की वजह से जाति-पाति और रुढी परंपरा गाँव में होने की वजह से समस्या पैदा हो गयी थी। ''जात-पात का टंटा, खानपदानी घमंड, दौलत की घौंस, अशिक्षा का अंधकार, लाठी की अकड, नफरत का नशा, रुढी और परंपरा का बोझ --- जनता की

सामुहिक उन्नति के मार्ग में एक नहीं अनेक रुकावटे थी।''[90] गाँव में चौधरी जैसे लोगों की वजह से लोग जाति-पाति, अशिक्षा, अपने सत्ता और पैसे के रोब पर जनता का शोषण करते थे इसका चित्रण मिलता है। इन चौधरी लोगों की वजह से गरीब लोगों को मिली हुई वस्तुओं और रकमों को सही जगह तक पहुँचाना आसान नहीं था। इसी तरह रुढी-परंपरा अमीरी, गरीबी, जात-पात, भ्रष्टाचार का चित्रण बडी यथार्थता से प्रस्तुत किया है।

गाँव में नित्याबाबू नाम के धनी व्यक्ति थे। उनका आधुनिक ढंग का दुमंजिला मकान, सोहल जंगले थी। शोहरत थी। लोगों ने ग्रामोफोन पहले उन्हीं के दालन पर सुना था। और उनका पोता विलायत बैरिस्टर बनने गया था। इतना सबकुछ होने के बाद भी नित्याबाबू बडे लालची स्वभाव के थे। उन्हें गाँव में आने वाले गेहूँ मुफ्त में चाहिऐ थे। उन्होंने दुखमोचन को इसी बारे में बताया - ''साँवा को दो और मकई-महुआ ही जिनके लिए सबसे अच्छी किस्म का आनाज ठहरा। उन्हें गेहुँ देना बेकार होगा वे ले तो लेंगे, लेकिन मिट्टी के भाव सारे दाने बेच डालेंगे। घूम फिरकर साह्यता का वह गेहूँ सही जगहों पर आ ही जायेगा। विधाता ने गेहूँ और धान सबके लिए थोडे ही सिरजे है?''[91] इतनी अमीरी होने के बावजूद भी गरीबों के लिए लाया हुआ आनाज अपनी बेटी की शादी के लिए माँगता है। इसीं प्रकार उसकी स्वार्थी और लालची प्रवृत्ति के दर्शन होते है। लेकिन दुखमोचन ने इसी बात पर इन्कार किया क्योंकि वह आखिर गरीबों के ही दुखमोचन थे। इसी तरह दुखमोचन की चेतना एवं गाँव के प्रति हमदर्दी के यहाँ दर्शन होते है।

गाँव में कांचन का दालन नामक वही हिस्सा था जो बेहद घना था और जहाँ कडी मेहनत मजदूरी करके गुजारा करनेवाले लोग रहते थे। उनमें चमारों की बिरादरी, जुलाहों के टोले, कायस्थ ग्वालों के तीन-चार भूमिहरों का मकान, दसघर ब्राह्मणों के आदि कई जातियों के लोग रहते थे। यहाँ स्पष्ट है कि ग्रामजीवन में हर एक जाति की अपनी-अपनी अलग बस्ती बनी है। अच्छी हैसियत के थोडे ही परिवार थे। भूमिहीनों की तादाद ज्यादा थी। चार सौ मन गेहूँ आया था। दुखमोचन, वेणीमाधव, मधुकान्त आदि सब वहाँ थे। सभी बिरादरीवाले लोग वहाँ अनाज लेने के लिए मौजुद थे।

हर परिवार को आधा मन के हिसाब से दो सौ सत्तर परिवारों को एक सौ पैतिस मन इस तरह अनाज बाटा गया। पुरी लिस्ट तैयार करके वेणीमाधव ने दुखमोचन को देदी। लेकिन वेणीमाधव का छोटा भाई जयमाधव ने दुखमोचन को बताया कि यह अफवाहे फैली है कि, ''गेहूँ ऐसे हैं कि मशीन से इनका सत निचोड़ लिया गया हैं, गेहूँ नहीं, गेहूँ की सीठी है यह ! दुसरी अफवा है कि जो भी गेहूँ लेगा उसे जबरन कोसी नदी के किनारे ले जाएँगे, अफसर लोग उससे महिनो बिना मजदुरी के काम लेंगे। तीसरी अफवाह है कि अगले साल सरकार चार गुना ज्यादा आनाज वसुल कर लेंगी।''[92] इसी तरह की अफवाहें नित्याबाबू जैसे लोग ही फैला सकते है। ताकि ज्यादा से ज्यादा अनाज उन्हें मिले। गरीब लोग डर की वजह से आनाज ना ले इसी तरह ऐसा कृत्य करके बडे लोगों की स्वार्थी प्रवृत्ति का, गरीबों पर अत्याचार का और उन्हें फसाने का चित्रण हुआ है।

दुखमोचन ने गरीब लोगों को समझा दिया कि वे सस्ती कीमत पर अपने गेहूँ न बेचे। इसी पर गाँव के एक औरत ने गेहूँ बेचने की बजाय वापस दिये क्योंकि उसके बेटे ने मनिऑर्डर से पचास रुपये भेजे थे। और घर में आनाज बाकी था। इसीलिए उसने अनाज वापस दिया। इसी तरह गाँव के गरीब लोग इमानदारी से अपना काम करते थे इस पर उपन्यासकार ने प्रकाश डाला है।

दुखमोचन का दोस्त रामसागर जो भूमिहर गरीब किसान था। रामसागर एक दिन जनकपूर धाम जाता है क्योंकि वहाँ शुक्ल पंचमी को दरसाल रामजी का ब्याह होता है, दूर दूर से लोग दर्शन करने आते थे। संतों की पलटन अपनी छावनी डाल देती थी। अयोध्या, चित्रकूट, काशी की बोली सुनने-देखने को मिलते थे। रामसागर के साथ पुलकितदास का भतीजा नवलकिशोर और टेकनाथ का छोटा भाई रामनाथ था। रामसागर ट्रेन में गांजे के मामले में पकडा जाता है। पुलिस उसे मधुबनी जेल में भेजती है। दुखमोचन को इस बारे में पता चलता है। वह जमकर पैरवी करता है। रामसागर को तीन हप्ते की कैद की सजा का फैसला सुनाया जाता है। अगर दुखमोचन वक्त पर आकर कोशीश नहीं करते तो रामसागर को तीन महिने की जेल हो जाती। दुखमोचन ने जासुसी छानबीन की तो पता चला कि नित्याबाबू की यह सारा खेल खेल रहे थे । इसी तरह बडे लोग गरीबों के खिलाफ

षडयंत्र रचा करते थे। और दुखमोचन इस षडयंत्र को तोडकर गरीबों की मदद करता था। इसी तरह उसकी उपन्यासकार ने चेतना जागृती पर प्रकाश डाला है।

दुखमोचन अपने गाँव में ही नहीं तो आसपास के गाँव के लोगों के दुखदर्द दूर करने की कोशिश करता था। पडोस के सिमरौन में एक किसान की खडी फसल जला दी गयी थी। इसी तरह मौजे पुनाईचक में किसी की फसल रात ही रात में काटकर ले गए, पता तक नहीं चला गाववालों को। पाँच गाँवों की एक ही पंचायत थी। जिसमें दस मेम्बर थे। टमकाकोइली में पुलकितदास और दुखमोचन पंच थे। कही कुछ झगडा उठ खडा होता तो पाँच गाँवों की पंचायत जुटती और जो कुछ फैसला होता उसकी रिपोर्ट अंचलाधिकारी साहब तक पहुँचानी पडती। धान की खडी फसलों के जलने और चोरी-चोरी काट लेने की ये जो शिकायते पंचायत के सामने आई उन्हें दूर करने के बारे में पंचोने कई उपाय सोचे। ''थाना से सशस्त्र सिपाहियों की मदत, चौकीदारों की तादाद बढाना, ग्रामरक्षा - समीति का संगठन फसलों की निगरानी के लिए काफी तनखाह देकर पहरेदारों की बहाली आदी।''[93]

दुखमोचन ने रक्षा समीति के संगठन पर ही ज्यादा जोर डाला और पंचो ने इस उपाय को एकमात्र अनुमति दे दी। इसी तरह गाँव की रक्षा के लिए, फसल बचाने के लिए, लोगों को एक होकर उपाय ढुंढने पडते थे। इसीतरह दुखमोचन जैसे लोग अपने गाँव और पडोसी गाँवों के लिए प्रयत्नशील रहते थे। सीमित संगठन बनाने की उनकी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है जो नागार्जुन के विचारों के वाहक लगती है। पंचायत व्यवस्था पंचायत के फैसले को मानने की प्रवृत्ति, ग्रामरक्षा समिति की स्थापना, संगठन बनाना आदि के रुप में परिवर्तित ग्रामजीवन के दर्शन होते है। ग्रामचेतना के कारण ग्राम जीवन में परिवर्तन हो रहे है, ऐसा लगता है।

दुखमोचन का मित्र वेणीमाधव की बहन माया का विवाह कुलीन मगर दरिद्र परिवार में हुआ था। उसका पति बाढ़ में उफनती 'बुढी गंडक' पार करते समय भवर में नाव उलटने से मर गया था। गाँव में विधवा विवाह अनहोनी घटना थी। कपील जयमाधव का स्कूल का साथी था। उसने बनारस रहकर बी.ए. तक पढाई की थी। उसकी पत्नी प्लेग में मर गयी थी। वह विधुर हो चुका था।

माया और कपील में चार-पाँच वर्ष का अंतर था। उन दोनों का स्नेह संपर्क बेहद गाढा हो गया था। कपील की समझ में नहीं आता था कि माया को भगा ले जाना और बाहर ही कही शादी करना उसकी प्रबुद्ध चेतना वैसा करना दुराचार और अविवेक मानती थी। उसे लगता था कि माया को पत्नी बनाने का खयाल छोड दे या फिर उसके अभिभावकों का समर्थन हासिल करे। कपील ने इस बारे में दुखमोचन की मदत लेनी चाही। उसने दुखमोचन के नाम एक पत्र लिखा। पत्र में माया और अपनी शादी के बारे में बताया। दुखमोचन ने वेणीमाधव को समझाकर आर्य समाजी पुरोहित से अपनी 'संस्कार-विधी' से शादी करने के बारे में बताया तो गाँव के मास्टर टेकनाथ और नित्याबाबू जैसे दकियानूसी लोगों ने विरोध प्रकट किया। लेकिन गाँव के अधिकांश लोगों ने यही कहा कि, ''विधवा लडकी ने रँडुआ लडके से संबंध कर लिया तो क्या बुरा किया ? इधर - उधर भटकती और भरस्ट होती तो गाँव-कुल का नाम डुबाती --- वह अच्छा होता कि यह अच्छा हुआ!''[94]

इसी तरह विधवा विवाह को प्रमुख स्थान देकर पुनर्विवाह के रुप में प्रस्तुत कर नये सामाजिक जीवन की संभावनाओं में विश्वास जताया है। नारी शोषण, विधवा समस्या पर एक ही उपाय है वह विधवा विवाह कराना --- नागार्जुन ने माया-कपील का विवाह रचाकर अपनी विचारधारा को प्रकट किया है। सामाजिक व्यवस्था के निर्माण में योगदान दिया है।

टमकाकोइली से दक्षिण डेढ मील तक यह कच्ची सडक गतवर्ष की बाढ में चौपट हो गयी थी। लोकल बोर्ड और लघुसिंचाई विभागवालों से लिखा पढ़ी चल रही थी। मगर और मामलों की तरह यह मामला भी लाल फीतों की गिरफ्त में था। ग्रामपंचायत ने जुरमाने के तौर पर पिछले साल सवा दो सौ रुपये वसुल किये थे। रकम मुन्शी पुलकितदास के नाम डाकखाने में जमा थी। पंद्रहमन आनाज दुखमोचन के जिम्मे था। लेकिन काम तो कई थे। रास्तों की मरम्मत, चमारों का कुआँ ! धँस गया था, ट्यूब वेल का प्रबंध, कन्या पाठशाला की छप्परों की दुरुस्ती । दुखमोचन ने धीरे-धीरे रास्ते पर मिट्टी डालने का काम शुरु कर दिया। मजदुर और मामूली ग्रामीण का इस काम में बडा योगदान था। गाँव के काम के लिए एक होके मेहनत करते थे - ''मजदुरी आधी मजदुरी पर मिट्टी कोडने और ढोने पर राजी

हो गये। खाते-पीते परिवारों से एक-एक आदमी बिना महेनताना के ही काम करने लगा। सिमरौन और पुनाई चक से ग्रामरक्षा समिति के जवान मदद के लिए आ पहूँचे।''[95] इसी तरह आधी मजदूरी पर भी मजदूर गाँव के विकास के लिए मेहनत से काम करते थे। दुसरे गाँव से भी जवान आये थे। इसका चित्रण मिलता है।

गाँव के कुछ दुराचारी लोग नेक काम में रोडे अटकाते है। गाँव में सब डिविजनल ऑफिसर, आँचलाधिकारी, दारोगा, जिला शाखा के मंत्रीजी आदि सब काम देखने आ गये थे। क्योंकि किसी ने सब डिविजनल ऑफिसर को गुमनाम चिठ्ठी देकर यह शिकायत की थी कि निकटवर्ती खेतों से भूमि का थोडा थोडा हिस्सा बाँध में मिलाया जा रहा है। किसानों में असंतोष है और झगडा हो सकता है। लाशे गिर सकती है। इसीलिए अधिकारी छान-बिन करने के लिए वहाँ आये थे। लेकिन दुखमोचन गाँव के नक्शे के मुताबिक ही काम शुरु किया था। दुखमोचन ने और कपील ने ऑफिसर को सब बाते समझा दी ।

इसी तरह गाँव का विकास करना, गाँव की समस्या सुलझाने में मदद करना तो दूर लेकिन कुछ लालची लोग उसमें ही बाधा डालने की कोशिश करते है। लेकिन दुखमोचन जैसे लोग कोई भी कठिनाई आने पर भी गाँव के विकास में अपना योगदान देते है। और कठिनाई निर्माण करनेवाले लोगों के साथ अपना संघर्ष बनाये रखते है इसका अच्छा उदा. यहाँ मिलता है। ग्रामवासियों की विभिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन होते है अंत: विघातक प्रवृत्ति का नाश होता है।

उपन्यास का कथानक इसी गाँव के नवनिर्माण से संबंधित है। स्वातंत्र्योत्तर भारत में नया संविधान बना। नये नियमों का निर्माण हुआ, नयी योजनाएँ बनाई गयी और राष्ट्र के प्रगति का कार्य करके सबके बीच में कितनी ही विरोधी शक्तियों ने बाधाएँ उपस्थित की। एक और गुलामी में पली संस्कृति ही स्वस्थ्य और स्वच्छ विकास को रोकने लगी तो इसी ओर अवसरवादीयों और प्रतिक्रियावादीयों का भ्रष्टाचार भी बना रहे। इस स्थिति के विरुद्ध विरोध करना और नये पुराने संघर्ष में नविनता का साथ देना इस उपन्यास का लक्ष रहा है। इस श्रेणी के उपन्यासों में नागार्जुन का 'दुखमोचन' महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिससे नया एवं पुरातन का संघर्ष नितांत स्वाभाविक धरातल पर चित्रित हुआ है।

प्रमुख उपन्यासों में स्वाधिन देश के उत्थान का कार्य की घटनाओं में दुखमोचन मजदुरों से कहता है - ''आगे हम बांध तैयार करेंगे, पोखर की मरम्मत करेंगे, कुओं की खुदवाई होगी, गाँव की तरक्की के दसों काम होंगे, एकजुट होकर हमे यह सब करना होगा।''[96] यहाँ दुखमोचन यथार्थ एवं गांधीवादी पात्र लगता है।

लालची लोगों के कारण ग्रामवासियों में बाधा पैदा होती है - ''जनता की सामुहिक उन्नती के मार्ग में एक नहीं अनेक रुकावटें थी। मुसीबतों के दिनों में बाहरवालों से तात्काल सहायता पाना जितना कठीन था उससे भी कठीण था सहायता में किसी वस्तुओं और रकमों को सही जगहों पर पहुँचाना, स्वार्थी और लालची लोगों के सींग नहीं हुआ करते।''[97]

गाँव मे संकट तो आते ही रहते थे, उनमें गरीब लोगों का नुकसान होता था। इसी तरह गाँव में एक दिन आग लगने से भारी संकट आ पडा। हरकुकी माँ शाम को हुक्का पी रही थी। बुढियाँ ने जब जोर का कश खिंचा तब सुलगती टिकिया से चिनगारियाँ भडक उठी। आगे के दो घरों के छप्पर जल गये। उसी समय उडती बगुले हवा के झोंको में पास पडोस के छप्परों पर पडने लगे और जहाँ तहाँ घर जलने लगे। लोग आग आग करके भागने लगे। तेज हवा के कारण पास पडोस के पचीसा घर जलकर भस्म हो गये। समूची बस्ती में खपरैल के मकान बीस-तीस से ज्यादा नहीं थे। बाकी छप्परों वाले थे। इसीलिए आग जल्दी लग जाती थी। घर का सामान निकालने का काम लोग करने लगे। अधिकांश आदमी घडे लेकर कुओं और पोखरों की तरफ भाग रहे थे। धुल भरी टोकरियाँ भी आग की लपेटोंपर डाली जाने लगी थी। दुसाधों, ग्वालों, धनुकों और जुलाहों के टोले तो आग की लपेटे में आही चुके थे। ब्राह्मण के घर जलने लगे थे। आग तो गरीब ही नहीं तो अमीरों के और सभी जात-पात के लोगों के घर लगी थी।

समुचा गाँव ही प्रलयंकारी लपेटों की गिरफ्त में आ गया था। विशाल पेडोंपर लटकनेवाले सैकडों घोंसले खाली हो गये थे। पक्षियों का झुंड आकाश में चक्कर काट रहा था। कुएँ से सैकडों घडे पानी निकाला गया था। पानी गंदा हो गया था। रास्तों के दोनो ओर घर जल रहे थे। ''सभी परिवारों

का एक जैसा हाल था। सब हताश थे, सभी रो रहे थे। सामान घरों से बाहर मैदान में खेतों में बागों मं बीच-बीच की खुली जगहों में जमाकर दिया गया था। बच्चें और औरते अपने अपने सामान के इर्द-गिर्द रोती बिसुरती दिखाई दे रही थी। गायों, बैलो, भैसों और बकरियों को गाँव के बाहर भगा दिया गया था।''[98] इसी तरह आग के प्रकोप की वजह से गाँव के लोग ही नहीं तो प्राणी और पशुपक्षी भी नहीं बचे थे। इसी तरह नागार्जुन ने आग की भयानकता का दर्दभरा चित्रण करने के साथ-साथ सामुहिकता का भी चित्रण किया है।

नित्याबाबु का मकान भी आग की चपेट में गया था। पुलकितदास का भी आग की वजह से मकानों का नुकसान हुआ था। मास्टर टेकनाथ अपनी बुआ से एक बूढा बैल माँगकर लाया था लेकिन वह भी आग की वजह से नहीं बचा। टेकनाथ जैसे गरीब ब्राह्मण के लिऐ ये मामूली मुसीबत नहीं थी। दुखमोचन ने नित्याबाबु और पुलकितदास जैसे लालची लोगों की मदद की। और टेकनाथ को दिलासा दिया। गाँव में आग लगने की खबर दूर-दूर तक फैली थी। दुखमोचन के मामी के देवर लिलाधर जो कई बरसों से घर से बाहर गया था वह भी आग का समाचार सुनते ही हालचाल पूछने गाँव फिर से वापर आ गया। आग की वजह से समूचे गाँव का भारी नुकसान हो गया था। यहाँ एक प्राकृतिक आपदा के सामने सभी समान है। सभी की तबाही उसमें होती परंतु उस काल में एकता-भाईचारा अनिवार्य था इस पर भी सोचा है।

पास पडोस के देहातो ने अनाज और श्रमशक्ति द्‌वारा टमकाकोइली के दुर्दशाग्रस्त लोगों की खुलकर सहायता की। जिल्हाधिश और आँचलाधिकारी के पहले ही दो हजार दो सौ रुप ये मदद के तौर पर दुखमोचन के हवाले कर दिये। पिपरा बाजार, दरभंगा और सीतामढी के व्यापारियों ने ढाई हजार रुपये, दो सौ मन अनाज, पंद्रह धान कपडा लोहे के दस सेर कील काँटे आदि काफी सामग्री भेझी। इसी तरह पुनर्निर्माण का काम शुरु हो गया। दुखमोचन ने सबसे पहले यह काम किया कि - ''दक्षिण देवी मंदिर के नजदीक सहायता शिबिर के लिए आठ-दस झोपडियाँ एक कतार में खडी करवाई समरौन, पुनई-पक, लखनौली आदि गाँवों के साठ जवान बिना मजदुरी के ही काम पर डटे थे।''[99]

इसी तरह दुखमोचन गाँव के सुधार के लिए ज्यादा से ज्यादा प्रयत्न कर रहे थे। आस-पास के गाँव के जवान बिना मजदुरी के ही काम पर डटे थे। यहाँ दुखमोचन का युवा नेतृत्व, सहयोगी प्रवृत्ति, शिबिर का निर्माण गाँववालों के मन में आत्मविश्वास जगाने की नीति आज के युग में आदर्श लगती है। सरकारी सहायता के साथ-ही-साथ जनमत का सहयोग भभ महत्त्वपूर्ण होता है। यही कार्य दुखमोचन करता है।

गाँव में रब्बी की फसल अच्छी हुऔ थी। आम भी अच्छे आये थे क्योंकि आग उन तक नहीं पहूँची थी। अग्निकांड के बाद साह्यता के कार्यों और जमाखर्च आदि का लेखा-जोखा दुखमोचन ने सभी जातियों, वर्गों के प्रतिनिधीयों के सामने रखा। घर तैयार करने की सामग्री के अलावा साढे सात हजार रुपये की नकद रकम सहायता के तौर पर मिली थी। हर परिवार के लिए एक-एक घर तैयार कर दिया गया था। फसल भी लोगों की अच्छी हो गयी थी। दुखमोचन ने गाँव में झंडा समारोह का कार्यक्रम रखा। सबसे बुजुर्ग बौघू चाचा को झंडा फहराने के लिए कहा ढोल बज रहा था। लोगों की उत्सुकता बढ रही थी। इसी तरह गाँव केलोगों ने झंडा फहराकर अपना उत्साह व्यक्त किया। गाँव का विकास धीरे-धीरे हो रहा था इसमें दुखमोचन का योगदान सबसे बडा था। यहाँ ग्राम सहयोग से कितनी भी बडी आपदा पर काबू प्राप्त किया जा सकता है और यह पुननिर्माण के लिए आवश्यक है इसका चित्रण मिलता है। झंडा समारोह सामुहिकता, एकता का प्रमाण है।

पक्की सडक, लघुसिंचाई, डाकखाना, पीने का पानी की सुविधा, ट्युब वेल, कन्या पाठशाला का होना, विधवा माया और कपिल का विवाह, बाढ पीडितों की सहायता, आग्निकांड के समय सेवा आदि घटनाएँ परिवर्तित ग्रामव्यवस्था के प्रमाण है। इसके मूल में नायक दुखमोचन ही है। डॉ. लोढा के मतानुसार - ''पूरे उपन्यास का कथानक इस ढंग से गढा गया है, जैसे समस्याओं की पहले एक सूची बनाकर सामने रख ली गयी है। और उनको उत्पन्न करने तथा समाधान करने के लिए पात्र गढकर उन्हें कथानक में गुंथ दिया गया हो।''[100] इसी तरह नागार्जुन ने अपने उपन्यास 'दुखमोचन' में सामाजिक समस्याओं का चित्रण किया है। इसमें विधवा विवाह समस्या, किसान मजदुरों की

समस्या, गाँव पर आग की आपत्ती की समस्या इसका चित्रण सुक्ष्मता से किया है। दुखमोचन को माध्यम बनाकर नागार्जुन ने गाँव की समस्याओं को हल करने का प्रयत्न किया है। उमा गगरानी के शब्दों में - ''विधवा माया और विधुर कपिल का विवाह हो, बाढ पीडितों की साह्यता का कार्य हो, रामसागर की माँ के मरने पर लकडी की समस्या हो, रुढियों के विरोध के लिए पंडित की बेंत से मार खाता हो, अग्निकांड में आग बुझने का कार्य हो, ग्राम सेवा हो या कोई और समस्या हो। सबका समाधान कर्ता दुखमोचन ही है।''[101]

इसके साथ गाँव के सभी पहलूँओं का, रीति-रिवाजों का और रुढी परंपराओं का वर्णन चित्रित किया है। गाँव के लोगों की बढती ईश्वर की श्रद्धा का वर्णन भी किया है। इसमें शालीग्राम पुजन, दूर्गा पुजा, काली का मंत्र, 'ब्रह्म दैवत पुराण' का पारायण, सत्यनारायण भगवान की पुजा आदि का वर्णन आया है। ''रिवाज के मुताबिक मामी ने पत्थर का टुकडा आगे रख दिया तो दुखमोचन ने उस पर पैर रखकर पानी डाल दिया। फिर भीगे कपडे बदले।''[102] इसी तरह गाँव में यह रीवाज है कि अग्नि संस्कार के पश्चात लौटने पर पत्थर पर पैर धोकर घर में प्रविष्ट होते है, जिससे श्मशान की कोई गंदगी घर में न आ सके क्योंकि शवयात्रा नंगे पाव ही की जाती है। दुखमोचन रामसागर की माँ का दाह संस्कार कर जब लौटता है तब ये प्रसंग आया है।

दुखमोचन व्यक्ति न रहकर टाइप बन गया है। पुरे उपन्यास का कथानक इस ढंग से गाढा गया है जिसे पहले समस्याओं की सूची बनायी है, अधिकांश पात्र यंत्रचलित है, टाइप बने है। दुखमोचन देश के नव निर्माण के प्रवक्ता है और यह नव निर्माण समाजवादी समाज की स्थापना का एक प्रयत्न है। दुखमोचन में परदुखकातरता के साथ गहरी मानवीयता है। मानवता के प्रति गहरी आस्था है। 'दुखमोचन' उपन्यास के कथावस्तु में घटनाओं की भरमार है परंतु जटिलता नहीं। उपन्यास का अंत फिल्मी लगता है, जैसे फिल्म समाप्त होने के बाद राष्ट्रध्वज के साथ राष्ट्रगीत गाने की प्रथा है उसी प्रकार उपन्यास की समाप्ति की है।

नागार्जुन के इस उपन्यास में खेत, खलिहान, पगडंडी, चौपाल, रेल के डब्बे और सहायता शिबीरों के बीच आत्मीयतापूर्ण सलाप सामने आये है। कथावस्तु में रोचकता आई है। पात्र

और चरित्र-चित्रण घटना के नुसार आये है। घटना विन्यास में नैतिक और सहज एवं कल्पित और स्वाभाविक का संतुलन आया है। भाषा शैली में गाली से लेकर वंदेमातरम तक बोली से लेकर परिनिष्ठित भाषा स्तर तक संगम दिखाई देता है। आँचलिक भाषा का प्रयोग बडी अच्छी तरह से किया है। इसी तरह यह उपन्यास चटोरे और चिंतक दोनों ही श्रेणियों के पाठकों की आवश्यकता पूर्ण करता है।

" 'दुखमोचन' नागार्जुन का चरित्रकेंद्रित उपन्यास है जो दामोदर धारी योजना तथा बांधों की समास्यापर लिखा गया संभवत: हिंदी का पहला उपन्यास है।"[103]

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्तमान की समकालीन समस्याओं का चित्रण हुआ है। बांध की समस्या भयावह थी, उसके खिलाफ जनआंदोलन हो रहे थे, उसका वर्णन किया है। आज वीरेंद्र जैन का 'इब' उपन्यास भी इसी प्रकार का है। उपन्यासकार की जागरुकता, सामाजिक दृष्टि दिखाई देती है। साथ-ही-साथ अग्निकांड की घटना विदारक है तो अंत झंडा फहराकर देशभक्ति और एकता को दर्शाता है। यह दुखमोचन ग्रामजीवन को दु:ख से मुक्ति दिलानेवाला आदर्श समाजसेवक है जो झूठे अभिमान, भावुकता, मान को दुर रखता है। जनसेवा का श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत करता है। ग्रामसुधार एवं ग्रामविकास के उनके विचार आज भी आदर्श लगते है। संत गाडगे बाबा ग्राम अभियान के लिए मार्गदर्शक हो सकता है। यह विचार नागार्जुन ने 50 साल पहले अपनी रचनाओं में चित्रित किया था। इससे नागार्जुन की भविष्यदृष्टि स्पष्ट होती है। पोखरो की मरम्मत, कुओं की खुदाई जैसी ठोस विकासात्मक योजनाओं को बनाना है यह महत्वकांक्षी नवचेतना का प्रमाण ही है।

प्रस्तुत उपन्यास में टमकाकोइली, पूर्णिया, दरभंगा, नागपुर, मधुबनी, जयघाट, पिपरा बाजार, मिथिला, समस्तीपुर, सिमैराना, मुजफ्फरपुर आदि ग्राम के जनजीवन चित्रित है।

निष्कर्ष :

टमकाकोइली गाँव का चित्रण आँचलिकता के बावजुद साविदेशिक लगता है। गाँव की गुट बंदी एवं समस्याएँ केवल टमकाकोइली की विडंबना नहीं है, पुरे देश के गावों की यथार्थ स्थिति है, टमकाकोइली मे बीमारियों का फैलना, गुटबंदी, खानदानी घमंड, जातपात का टंटा, दौलत की घौंस, नफरत, रुढी, परंपरा का बोझ केवल उसी गाँव का नहीं सभी गावों की प्रवृत्ति है।

नायक दुखमोचन सचमुच दुसरों के दु:ख दूर करने में व्यस्त रहे है। यह पात्र उदात्त भावनाओं से युक्त सुशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति है। 'दुखमोचन' उपन्यास कलात्मकता दृष्टि से 'नई पौध', 'बलचनमा' आदि उपन्यासों से अधिक प्रभावशाली है क्योंकि साम्यवादी दृष्टिकोन की प्रचारात्मक प्रवृत्ति पात्रों पर आरोपित नहीं हुई है। यह नायक किसानो में चेतना भरता है।

दुखमोचन जनजीवन को दु:खों से मुक्ति दिलानेवाला पुरुष है जो झूठे अभिमान, मर्यादा, अनावश्यक भावूकता, फिजूल बातों से अपने आप को दूर रखता है। अर्थात जनसेवक में भेदभाव नहीं रहता है। उसका लक्ष्य ग्राम सुधार ही है। उसकी प्रगतिशील महत्वकांक्षी विचारधाराएँ गाँव में नवचेतना का स्वर प्रदान करती है। यह एक आदर्शवादी पात्र है।

ग्रामजीवन की वास्तविकता पर प्रकाश डालनेवाली तथा दुखमोचन के माध्यम से नया नेतृत्व स्पष्ट करनेवाली एक श्रेष्ठ रचना 'दुखमोचन' उपन्यास है। 'दुखमोचन' में चित्रित दुखमोचन अभी तक हमारे ग्रामों में तैयार नहीं हुए। आजादी के पश्चात भी ग्रामों की दु:स्थिति में मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। पेट भरने के लिए लाखों ग्रामवासी नगरों की ओर जा रहे है, उनकी स्थिति में परिवर्तन लाने वाला दुखमोचन निर्माण होने की जरुरत है। ऐसा लगता है इस दृष्टि से यह उपन्यास महत्त्वपूर्ण रहा है।

निष्कर्ष :-

द्वितीय अध्याय 'नागार्जुन के आलोच्य उपन्यासों का कथ्य' में 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1954), 'नई पौध' (1963), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'दुखमोचन' (1957) आदि उपन्यासों की कथावस्तु एवं कथ्य पर विस्तृत विचार किया है।

कथावस्तु उपन्यास का प्राण है। उपन्यासकार अपने विचार कथावस्तु के माध्यम से स्पष्ट करता है। उपन्यास में समकालीन समाजजीवन का, समाज जीवन में होने वाले परिवर्तन का, उत्पन्न चेतना का, तात्कालीन सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण होता है। आलोच्य उपन्यासों में ग्रामजीवन के साथ, काँग्रेस आंदोलन, आजादी की लडाई, गांधी नेहरु का कार्य, ग्रामजीवन

में स्वाधीनता के विचार आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। यह उपन्यास तात्कालीन ग्रामजीवन का, समकालीन जीवन का चित्रण करने में सफल लगते है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास साहित्य में स्वरुप में काफी परिवर्तन हुआ। समाज जीवन की हर एक घटनाओं को विषय बनाकर कथावस्तु का निर्माण किया है। ग्रामजीवन के समाज व्यवस्था का चित्रण किया है। ग्राम जीवन, व्यवसाय, जाती व्यवस्था, आर्थिक दशा, राजनीतिक चेतना, जमीनदारों की मनमानी, शोषित नारी पर प्रकाश डाला है। प्रमुख कथाओं के साथ गौण कथाओं का मेल रहा है। परस्पर विस्तार में उनका योग रहा है। आलोच्य उपन्यासों की कथावस्तु सिर्फ रचना निर्माण तक सीमित न होकर उपन्यासकार का दृष्टिकोन रहा है। लोकगीत, लोककथा में लोकभाषा का प्रयोग करके ग्रामजीवन आंचलिकता को चारचाँद लगाएँ है यह कहना अनुचित नहीं होगा।

नागार्जुन प्रगतिवादी समकालीन साहित्यकार है। रचनाओं का निर्माण मन बहलाने के लिए न करके समाजजीवन को दिशा देने के लिए करते है। समाज के सभी वर्ग का चित्रण किया है। नारी, विधवा नारी, वेश्या, शोषित, पत्नी, किसान मजदुर, बंधुआ आदि का चित्रण किया है। मिथिलांचल की कहानी उपन्यास की कथावस्तु रही है। सामान्य से अतिसामान्य व्यक्तित्व का चित्रण करके समाजवादी विचारों का प्रसार करने का कार्य किया है।

'रतिनाथ की चाची' में विधवा नारी की दशा चित्रित की है। भारतीय समाज व्यवस्था में नारी, विधवा नारी का जीवन शोषण की करुण कहानी है, उस पर यहाँ प्रकाश डाला है। 'गौरी' भारतीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। अपमान, पीडा, तिरस्कार, लांछन से भरी कर्मकहानी है। शुभंकरपूर की ग्रामव्यवस्था भारतीय ग्राम व्यवस्था का प्रतिक है। अनमेल विवाह नारी जीवन के लिए सामाजिक कलंक रहा है। अत्याचार का विरोध न करनेवाली गौरी धार्मिक भी रही है। अवैध यौन संबंध, उससे उत्पन्न अवैध संतान की समस्या पर भी यहाँ सोचा है। तो दुसरी ओर अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए संघर्ष करने वाले किसान नागार्जुन के विचारों के वाहक है। खेत मजदुर किसान अपने हक्क के लिए लड रहा है, ऐसा यहाँ लगता है।

नागार्जुन के प्रगतिशील विचारों की अभिव्यक्ति 'नई पौध' में हुई है। अनमेल विवाह के खिलाफ नई चेतना जागृत करने का कार्य करनेवाली यह रचना है। 'नई पौध' प्रतिकात्मक कृति है। अमानवीय रुढी परंपरा का विरोध करने वाली नई पीढी समाज का भविष्य लगती है। उनके कारण ही नया भारत बनेगा यही आस्था लेखक की है। नागार्जुन 'बिसेसरी' की यह कथा नारी जीवन की कथा रही है। धार्मिक व्यक्ति की भ्रष्ट प्रवृत्ति, उनकी झूठी मान्यता, मापदंड से शोषित नारी पर भी यहाँ सोचा है। प्रस्तुत कहानी के नये संदर्भ में अर्थ चित्रित करने का पहला कार्य नागार्जुन ने किया है। यह एक श्रेष्ठ कृति बनी है।

दरभंगा जिले के अभावग्रस्त किसानों की कहानी 'बलचनमा' है। आत्मकथात्मक शैली में लिखी यह रचना कृषक जीवन की संघर्ष गाथा ही है। जमीनदारों की मनमानी भ्रष्टाचार नीति का चित्रण किया है। बलचनमा प्रस्थापित व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करता है। सर्वहारा वर्ग की क्रांति की मशाल जलानेवाला मसिहा बलचनमा बनता है। यह नागार्जुन के विचारों का प्रतिनिधी पात्र है। काँग्रेस नीति, गांधी युग, नेहरु का प्रभाव, आजादी की लडाई, ग्रामीण जनता का योगदान आदि का भी चित्रण किया है। 'रेवती' जमीनदारों के शोषण की शिकार युवती है। भ्रष्ट व्यवस्था का विरोध यहाँ हुआ है। ऐसा लगता है आज धीरे-धीरे प्रस्थापित समाज रचना व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन का दौर शुरु हुआ है।

समाजवादी विचारों का प्रतिनिधी आंचलिक उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' है। एक अनोखी शैली में एक रात की कहानी परंतु सैकडो वर्षों की कथा यह उपन्यास है। बाबा वृक्ष नहीं, बल्कि गाँव की अस्मिता रहा है। ग्रामजीवन में होनेवाले अच्छे बुरे परिणामों का इतिहास यह उपन्यास है। ग्राम की देवता रक्षक बाबा है। धर्म, श्रद्धा, आस्था, भक्ति का प्रतिक है। किसान सभा, नौजवान संघ, नवयुवाओं की मिटिंग, ग्राम सभा समिती का होना चेतना का प्रभाव है। उपन्यास का अंत भी प्रभावी हुआ है।

जनसेवा परायण, समाजवादी विचारों की प्रतिनिधी रचना दुखमोचन है। ग्रामजीवन के विकास में सहयोग देनेवाला दु:ख दूर करनेवाला यह नायक है।

नागार्जुन ग्रामजीवन समाजव्यवस्था उनमें फैली अशिक्षा, अंधश्रद्धा जमीनदारों की मनमानी, अत्याचार, नारी की स्थिति, किसानों की स्थिति, राजनीतिक आंदोलन, सांस्कृतिक स्तर, रुढी, प्रथा, परंपरा, लोकगीत, लोककथा आदि का प्रभावी ढंग से चित्रण किया है।

नागार्जुन काल्पनिक कथा - लिखनेवाले, मनोरंजन के लिए साहित्य लिखनेवाले साहित्यकार नहीं बल्कि समाजजीवन का यथार्थ चित्रण करने वाले प्रभावी समाजवादी साहित्यकार है। नारी शोषण, अत्याचार, जमीनदारों की मनमानी के खिलाफ आवाज उठाते है। उनके पात्र क्रांतिकारी है। नई विचारों के वाहक, दु:ख, अभाव के विनाशक है। अत: उनकी रचनाएँ मिथिलांचल के ग्रामजीवन की करुण कहानी है। ग्रामजीवन की तस्वीर है। ग्रामजीवन की अकाल, भूचाल, बारीश आदी प्राकृतिक आपदा का भी चित्रण करके कथावस्तु में जान डाली है।

---xxx---

संदर्भ सूची

1. 'हंस', जनवरी 1999, पृ. 131.
2. डॉ. संतोषकुमार त्रिपाठी - 'नये कविता के हस्ताक्षर', पृ.73.
3. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ. 20.
4. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.49.
5. इंद्रनाथ मदन - 'हिंदी उपन्यास एक नई दृष्टी', पृ.38.
6. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', पृ.8.
7. वही, पृ.8.
8. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.122.
9. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', पृ.58.
10. वही, पृ.58.
11. वही, पृ.87.
12. डॉ. प्रकाशचंद्र मेहता - 'प्रगतीवादी और हिन्दी उपन्यास', पृ.367.
13. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', पृ.94.
14. वही, पृ. 108-109.
15. वही, पृ. 110.
16. वही, पृ. 94.
17. डॉ. सुभाष धवन - 'हिंदी उपन्यास', पृ.309.
18. डॉ. उषा सक्सेना - 'हिंदी उपन्यासों का शिल्पगत विकास', पृ.241.
19. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ. 73.
20. डॉ. सरोजिनी त्रिपाठी - 'आधुनिक हिंदी उपन्यासों में वस्तुविन्यास', पृ.223.
21. डॉ. गिरीधर प्रकाश शर्मा - 'हिंदी उपन्यासों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन', पृ.211.

22. डॉ. प्रेम भटनागर - 'हिंदी उपन्यास शिल्प, बदलते परिप्रेक्ष्य', पृ. 73.

23. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ.10.

24. डॉ. बदरी प्रसाद - 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास', पृ.124.

25. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ.30.

26. वही,पृ. 30.

27. वही, पृ. 75.

28. वही, पृ.82.

29. वही, पृ.123.

30. वही, पृ. 136.

31. वही, पृ.140.

32. वही, पृ.152.

33. उमा गगराणी - 'उपन्यासकार रेणू तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन', पृ.172.

34. नागार्जुन - 'बचलनमा', पृ.167.

35. डॉ. अनिता रावत - 'अमृतलाल नागर के उपन्यासों में आधुनिकता', पृ.26.

36. नागार्जुन - 'बचलनमा', पृ.174.

37. वही, पृ. 194.

38. डॉ. उमा गगराणी - 'उपन्यासकार रेणू तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन', पृ.28.

39. प्रा. अर्जुन जानू घरत - 'कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ', पृ. 93.

40. डॉ. बदरीप्रसाद - 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास', पृ.125.

41. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ.53.

42. डॉ. बदरीप्रसाद - 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास', पृ.125.

43. डॉ. बेचेन शर्मा - 'आधुनिक हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास', पृ.206.

44. विजय बहादूर सिंह - 'नागार्जुन का रचना संसार', पृ.165.

45. नागार्जुन - 'नई पौध', पृ.10.

46. वही, पृ. 11.

47. वही, पृ.11.

48. वही, पृ.16.

49. वही, पृ.18.

50. वही, पृ.25.

51. वही, पृ.35.

52. वही, पृ.42.

53. वही, पृ.80.

54. वही, पृ.110.

55. वही, पृ. 115.

56. 'आलोचना' - अक्तुबर 1954, पृ. 291.

57. डॉ. महाविरम लोढा - 'हिंदी उपन्यासों का शास्त्रिय विवेचन', पृ.84.

58. रामदशरथ मिश्र - 'हिंदी उपन्यास एक अन्त यात्रा', पृ.231.

59. सुरेश सिन्हा - 'हिंदी उपन्यास उद्भव और विकास', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.510.

60. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ. 9.

61. वही, पृ. 11.

62. प्रा. अर्जुन जानू घरत - 'कथाकार नागार्जुन एवं बाबा बटेसरनाथ', पृ. 75.

63. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ. 152.

64. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ.47.

65. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.175.

66. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ.54.

67. वही, पृ.60.

68. वही, पृ. 62.

69. वही, पृ.63.

70. वही, पृ. 69.

71. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.117.

72. वही, पृ. 132.

73. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ. 80.

74. वही, पृ. 81.

75. वही, पृ.82.

76. वही, पृ.84.

77. वही, पृ.100.

78. वही, पृ.99

79. मन्मथनाथ गुप्त - 'भारतीय क्रांतिकारी आंदोलन का इतिहास', पृ.225.

80. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ.122.

81. वही, पृ.127.

82. डॉ. ललित अरोडा - 'नागार्जुन एक अध्ययन', पृ.56.

83. डॉ. बदरीप्रसाद - 'प्रगतिवादी हिंदी उपन्यास', पृ.128.

84. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन', पृ.121

85. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', पृ.35.

86. नागार्जुन - 'दुखमोचन', पृ.11.

87. वही, पृ.12.

88. उमा गगराणी - 'उपन्यासकार रेणू तथा नागार्जुन के रचना का तुलनात्मक अध्ययन', पृ.103.

89. नागार्जुन - 'दुखमोचन', पृ.21.

90. वही, पृ.22.

91. वही, पृ. 34.

92. वही, पृ.41.

93. वही, पृ.58.

94. वही, पृ.99.

95. वही, पृ.115.

96. नागार्जुन - 'दुखमोचन', पृ.129.

97. वही, पृ.123.

98. वही, पृ.129.

99. वही, पृ.147.

100. डॉ. महावीर प्रसाद लोढा - 'हिंदी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन', पृ.86.

101. उमा गगराणी - 'उपन्यासकार रेणू तथा नागार्जुन के रचना संसार का तुलनात्मक अध्ययन', पृ.89.

102. नागार्जुन - 'दुखमोचन', पृ. 13.

103. 'हंस' - जनवरी - 1999, पृ. 132.

---xxx---